मार्च
2024

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

अखण्ड ज्योति

वर्ष–88 | अंक–3 | प्रति–₹ 25 | ₹–300 वार्षिक

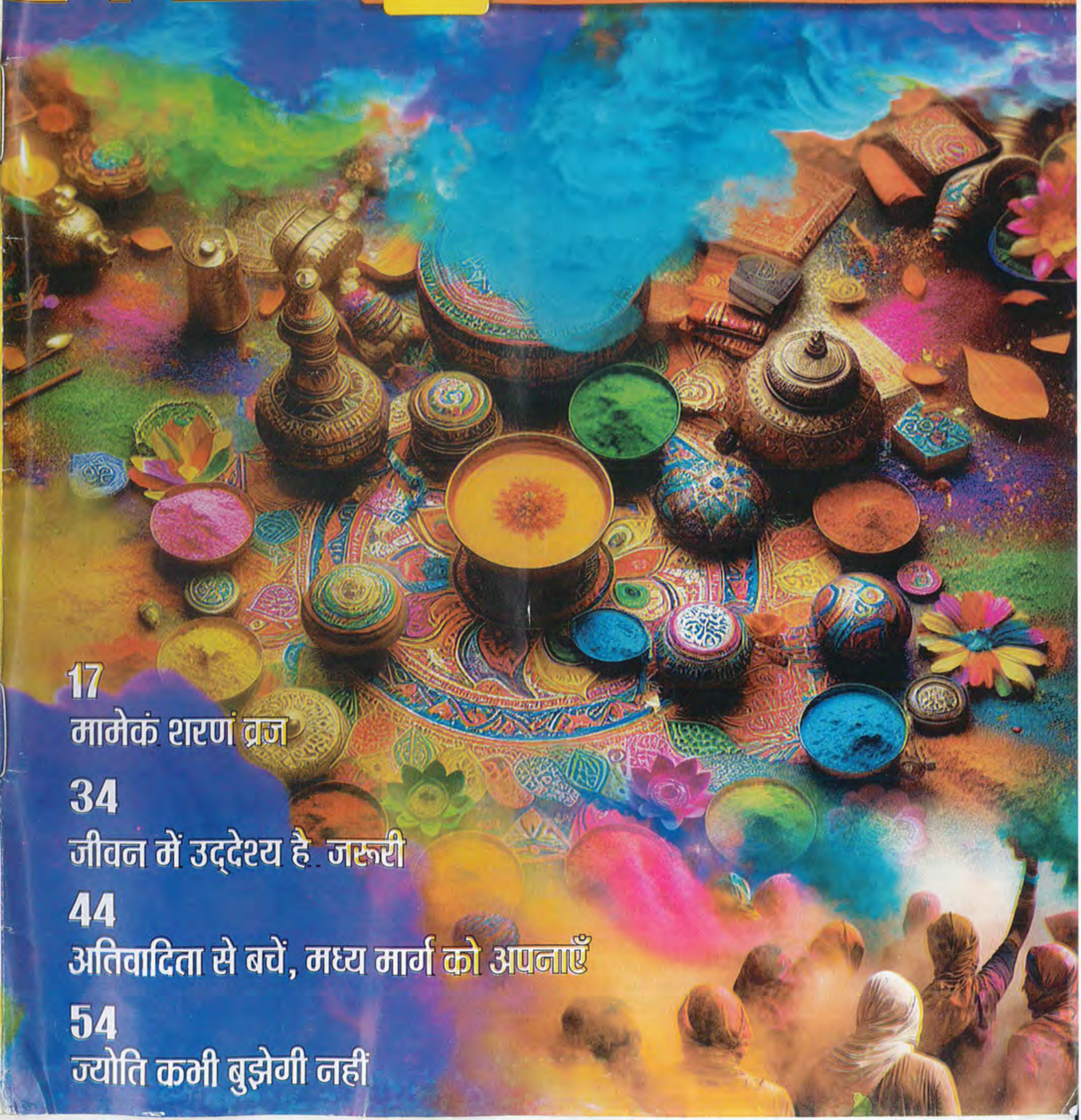

17
मामेकं शरणं व्रज

34
जीवन में उद्देश्य है जरूरी

44
अतिवादिता से बचें, मध्य मार्ग को अपनाएँ

54
ज्योति कभी बुझेगी नहीं

75 वर्ष पूर्व अखण्ड ज्योति

मार्च–1949

बुद्धिमानो ! बुद्धि का सदुपयोग करो।

नीति का वचन है कि ''बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धिस्य कुतो बलः'' जिसमें बुद्धि है उसमें बल है, निर्बुद्धि में बल कहाँ से आया? जो जितना ही बुद्धिमान है, वह उतना ही बलवान है। बुद्धिहीन का सारा बल निष्फल हो जाता है। मनुष्य ने इस बुद्धिबल के द्वारा ही इतना प्रभुत्व प्राप्त किया है। इसी की न्यूनाधिकता के कारण मनुष्य-मनुष्य के बीच में अंतर दिखाई देता है। साधारणतः मानव प्राणियों के शरीर और आकृति में कोई भारी अंतर नहीं होता, फिर भी राजा-रंक, धनी-दरिद्र, विद्वान-मूर्ख, सत्तारूढ़-पराश्रित, शोषक-शोषित, पुण्यात्मा-पापी, महापुरुष-दीन-हीन, चतुर-भोंदू के बीच जमीन-आसमान का अंतर पाया जाता है। एक पालकी में बैठकर चलता है, एक पालकी को उठाता है। एक की उँगलियों के इशारे पर लाखों-करोड़ों प्राणियों की गतिविधि होती है, एक दूसरों द्वारा कठपुतली की तरह नचाया जाता है। एक का सर्वत्र जयघोष होता है और उसके चरणों पर सर्वस्व अर्पित किया जाता है। दूसरी ओर एक ऐसा व्यक्ति है, जिसे कोई आँख उठाकर भी नहीं देखता। इतना भारी अंतर शरीरों के कारण नहीं, बुद्धिबल के कारण है, जिसमें जितना बुद्धि तत्त्व अधिक है, वह उतना ही बड़ा आदमी बन जाता है।

श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
वेदमूर्ति तपोनिष्ठ
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य
एवं
शक्तिस्वरूपा
माता भगवती देवी शर्मा
संपादक
डॉ० प्रणव पण्ड्या
कार्यालय
बिरला मंदिर के सामने मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)
दूरभाष नं० (0565) 2403940, 2972449 2412272, 2412273
मोबाइल नं० 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039
समय—प्रातः 10 से सायं 6 तक कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।
नया ई-मेल :
akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

वर्ष	:	88
अंक	:	03
मार्च	:	2024
फाल्गुन-चैत्र	:	2080
प्रकाशन तिथि	:	01.02.2024
वार्षिक चंदा		
भारत में	:	300/-
विदेश में	:	2800/-
आजीवन (बीसवर्षीय)		
भारत में	:	6000/-

जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं

'जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं'—भगवान के जन्म और कर्म की दिव्य कथा है—गीता। जीवात्मा और परमात्मा दोनों जन्म लेते हैं, कर्म भी दोनों करते हैं। चर्मचक्षुओं की सामान्य दृष्टि दोनों में समानता देख-देखकर भ्रमित होती रहती है; जबकि अंत:चक्षुओं की आध्यात्मिक दृष्टि इन दोनों में साफ-साफ अंतर देख पाने में समर्थ होती है। एक के जन्म और कर्म लौकिक होते हैं, तो दूसरे में अलौकिकता का आलोक होता है।

जीवात्मा कर्म के प्रारब्ध बंधन में बँधकर जन्म लेती है। प्रारब्ध-पाश ही उसके परिवार, परिवेश-परिस्थिति एवं कर्मों का कारण बनता है। उसका पुरुषार्थ भी परमात्मा से जुड़कर ही पूर्ण होता है। मुक्ति की आकांक्षा उसे जीवनभर जिस किसी तरह जब-तब बेचैन किए रहती है; जबकि परमात्मा स्वसंकल्प व अवतार-प्रयोजन के लिए जन्म लेते हैं। वे जीवों को प्रारब्ध-पाश से मुक्त करते हैं। वे मुक्ति की आकांक्षा से नहीं, मुक्तिप्रदाता बनकर आते हैं। वे प्रकृति के आधीन होकर नहीं, प्रकृति को अपने आधीन करके जन्म लेते हैं, कर्म करते हैं।

इसीलिए तो **'परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥'** अनेक जीवों के एक स्वामी श्रीराम चाहे अयोध्या में जन्म लें, या फिर आँवलखेड़ा में; उनके जन्म का क्षण चैत्र शुक्ल नवमी हो या आश्विन कृष्ण त्रयोदशी—परम दिव्य होता है। उनके कर्म का कारण भी सदा **'निसिचर हीन करउँ महि'** ही बना रहता है। ऐसे में महापरिवर्तन करने वाले उनके अवतार कार्य में हम प्रभुभक्तों का संकल्प भी **'राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम'** ही होना चाहिए। ❑

►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄

विषय सूची

- आवरण—1 1
- आवरण—2 2
- जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं 3
- **विशिष्ट सामयिक चिंतन**
  जलवायु-परिवर्तन से उत्पन्न विभीषिकाएँ 5
- संत एकनाथ का अतिथि प्रेम 8
- **पर्व विशेष—महाशिवरात्रि**
  नवयुग का प्रकट रूप हैं
  प्रज्ञेश्वर महादेव 10
- सादा जीवन-उच्च विचार 15
- मामेकं शरणं व्रज 17
- अतिचिंतन पर कैसे पाएँ विजय 23
- प्रभावशाली लाल रंग 25
- भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी 27
- व्यक्तित्व के आधार को पोषित करें 32
- जीवन में उद्‌देश्य है जरूरी 34
- **परमपूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा—18**
  वेदमाता गायत्री की उपासना 36
- साधें अपना चिंतन, चरित्र और व्यवहार 38
- **ब्रह्मवर्चस-देव संस्कृति शोध सार—179**
  प्राचीन भारत की युद्ध-प्रणाली 40
- अतिवादिता से बचें, मध्य मार्ग को अपनाएँ 44
- पैदल भी चलें 46
- **युगगीता—286**
  तत्परता एवं निष्कामता से करें सत्कर्म 49
- **विश्वविद्यालय परिसर से—225**
  युवापीढ़ी को नशे से बचाएँ,
  सृजन में लगाएँ 51
- **परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी**
  ज्योति कभी बुझेगी नहीं 54
- **साधना शताब्दी-विशिष्ट लेखमाला**
  प्रकृति में फैलती प्रकाश-किरणें 60
- **अपनों से अपनी बात**
  नैतिक एवं बौद्धिक क्रांति का आह्वान 63
- साधन-समय लगाओ अब (कविता) 66
- आवरण—3 67
- आवरण—4 68

आवरण पृष्ठ परिचय

रंग-बिरंगी प्यार लुटाती होली

मार्च-अप्रैल, 2024 के पर्व-त्योहार

बुधवार	06 मार्च	विजया एकादशी 'स्मा.'	शुक्रवार	05 अप्रैल	पापमोचनी एकादशी
शुक्रवार	08 मार्च	महाशिवरात्रि	सोमवार	08 अप्रैल	सोमवती अमावस्या
मंगलवार	12 मार्च	रामकृष्ण परमहंस जयंती	मंगलवार	09 अप्रैल	नवरात्रारंभ/ नवसंवत्सरारंभ
शुक्रवार	15 मार्च	सूर्य षष्ठी	गुरुवार	11 अप्रैल	गणगौर/रमजान
रविवार	17 मार्च	होलाष्टक	रविवार	14 अप्रैल	सूर्य षष्ठी
बुधवार	20 मार्च	आमलकी एकादशी	बुधवार	17 अप्रैल	श्रीराम नवमी
रविवार	24 मार्च	होलिका दहन	शुक्रवार	19 अप्रैल	कामदा एकादशी
सोमवार	25 मार्च	होली	रविवार	21 अप्रैल	महावीर जयंती
शुक्रवार	29 मार्च	गुड फ्राइडे	मंगलवार	23 अप्रैल	हनुमान जयंती/पूर्णिमा व्रत

★ **यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे। —*संपादक***

▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀

विशिष्ट सामयिक चिंतन

जलवायु-परिवर्तन से उत्पन्न विभीषिकाएँ

जलवायु-परिवर्तन आज एक प्रत्यक्ष संकट है; जिसके खतरों के विषय में वैज्ञानिक से लेकर पर्यावरणविद् एवं मनीषी दशकों से सचेत करते आ रहे हैं। आज इसका संकट द्वार पर खड़ा होकर मानवता के अस्तित्व को लेकर गहरे सवालों को पूछ रहा है। वर्ष 2023 में पूरे वर्षभर विश्व के कोने-कोने में नाना प्रकार की प्राकृतिक आपदाओं की बाढ़-सी आती रही, जो सोचने के लिए बाध्य कर रही है। हालाँकि इसे अभी सामूहिक महाविनाश की एक झलकभर कह सकते हैं, जो समय रहते इनसान को सुधरने व सामूहिक स्तर पर कुछ करने के लिए सचेत कर रही है।

वर्ष 2023 का पूर्वार्द्ध मौसम में भीषण परिवर्तन पहले गरमी की मार, फिर भीषण वर्षा, बाढ़, चक्रवात और इसी के समानांतर पृथ्वी के एक हिस्से में पुन: वर्ष के उत्तरार्द्ध में वर्षा व गरमी की विभीषिका के लिए जाना जाएगा। पूरी पृथ्वी पर जीवन जैसे त्राहिमाम् कर उठा। धरती का शायद ही कोई कोना बचा हो, जिसने जलवायु-परिवर्तन की संघातिक मार न झेली हो, जो अपने साथ सामूहिक भविष्य के बारे में सोचने के लिए विवश न हुआ हो।

नासा के गोडार्ड इन्स्टीट्यूट ऑफ स्पेस स्टडीज के अनुसार, सन् 1880 में मौसम संबंधी वैश्विक रिकॉर्ड प्रारंभ होने के बाद से वर्ष 2023 सबसे अधिक गरम वर्ष रहा। नासा के रिकॉर्ड में जून, जुलाई और अगस्त के माह किसी भी अन्य गरम महीनों की तुलना में 0.23 डिगरी सेल्सियस अधिक गरम रहे और सन् 1951 से 1980 के बीच की औसत गरमियों की तुलना में 1.2 डिगरी सेल्सियस अधिक गरम दरज किए गए। इनमें से अगस्त का माह 0.2 डिगरी सेल्सियस औसत से अधिक गरम रहा।

मालूम हो कि उत्तरी गोलार्द्ध में जून से अगस्त तक के मौसम को गरमी का मौसम माना जाता है। बढ़ते तापमान के कारण वर्ष 2023 में विश्वभर में गंभीर परिणाम परिलक्षित हुए हैं। जलवायु-परिवर्तन के चलते समूची पृथ्वी और भावी पीढ़ियों के लिए खतरा उत्पन्न हो गया है। विश्व के बड़े हिस्से में भारी गरमी पड़ रही है, जिससे कनाडा, अमेरिका और हवाई के जंगल भयावह आग की चपेट में आए।

दक्षिण अमेरिका, जापान, यूरोप और अमेरिका में लू चरम पर रही; जबकि एशिया, इटली, ग्रीस, मध्य यूरोप और अमेरिका में भयंकर बारिश होती रही और विनाशकारी तूफान आए। वैज्ञानिक भीषण गरमी के लिए अल नीनो को जिम्मेदार मान रहे हैं।

नासा की एक रिपोर्ट के अनुसार, अल नीनो की वापसी के कारण समुद्र की सतह का बढ़ा हुआ तापमान रिकॉर्ड गरमी के लिए काफी हद तक जिम्मेदार है। अल नीनो एक प्राकृतिक घटना है, जो मध्य और पूर्वी उष्णकटिबंधीय प्रशांत महासागर में समुद्र की सतह के तापमान के सामान्य से अधिक गरम होने की वजह से होती है। वैज्ञानिकों द्वारा दशकों तक किए गए विश्लेषण से यह भी स्पष्ट है कि बढ़ते तापमान का मुख्य कारण मानव जाति द्वारा उत्सर्जित ग्रीनहाउस गैस हैं। भारतीय संदर्भ में चर्चा करें तो मई-जून माह इस वर्ष अप्रत्याशित रूप से पिछले कई दशकों से भिन्न रहा।

विशेषकर उत्तरी भारत में गरमी के इस मौसम में प्रचलन के विपरीत बारिश होती रही व गरमी की तपन से बचने पर अवश्य काफी राहत अनुभव हुई, लेकिन अत्यधिक बारिश के कारण भूमि में नमी इतनी रच-बस गई, जो आगे चलकर जुलाई माह में भारी बरसात के बीच बाढ़, भूस्खलन से लेकर तमाम तरह की प्राकृतिक आपदाओं का कारण बनी।

जून के प्रथम सप्ताह में दक्षिण पूर्व अरब सागर से उठे विप्रजॉय चक्रवात ने अगले दो सप्ताह में गुजरात तथा राजस्थान प्रांत में भारी तबाही मचाई, जिसमें समय रहते लाखों लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाया गया था। जुलाई व अगस्त माह में सावन के बादल हिमाचल, पंजाब, उत्तराखंड सहित दिल्ली तथा मैदानी क्षेत्रों में मूसलाधार बारिश के रूप में कहर बनकर बरसे। इसमें मानसून के साथ पश्चिमी विक्षोभ का सम्मिलित प्रभाव रहा।

हिमाचल प्रदेश में 9-10 जुलाई को भयानक वर्षा के साथ बाढ़ की जो स्थिति उत्पन्न हुई, वह बहुत कुछ सन् 2013 की केदारनाथ त्रासदी की याद दिलाती रही। इसके बाद 13-14 अगस्त और फिर 23-24 अगस्त को इसी तरह के हालात बने। जुलाई-अगस्त माह में ही कितनी ही जगह बादल फटने व परिणामस्वरूप वर्षा-बाढ़ के साथ कितने सारे लोगों के बहने व घरों के ध्वस्त होने के समाचार आते रहे।

उत्तराखंड में चारधाम की यात्राएँ भारी भूस्खलन के कारण आएदिन प्रभावित होती रहीं। इस सबके विपरीत केरल, महाराष्ट्र जैसे कुछ प्रांतों को सूखाग्रस्त घोषित करना पड़ा, जहाँ औसत से कम बारिश हुई। विदेशों से भी इस बीच भारी बारिश के साथ तबाही के समाचार आते रहे। मध्य यूरोप के छोटे से देश स्लोवीनिया में अगस्त माह के प्रथम सप्ताह में, चौबीस घंटों में पूरे माह इतनी बारिश हुई, जो जान-माल की भारी तबाही करती हुई, अब तक की वहाँ की सबसे बड़ी प्राकृतिक विभीषिका के रूप में नाम दर्ज करा गई।

हांगकांग में कई शहर डूबे तथा 140 वर्षों की सर्वाधिक बारिश दर्ज की गई—जिसमें सड़कें, शॉपिंग मॉल व मेट्रो स्टेशन जलमग्न हो गए। वहीं चीन के शेनजेंग में हाइकुई तूफान के चलते भीषण बारिश हुई। जोरदार बारिश के चलते सभी स्कूलों, कई मेट्रो स्टेशन और दफ्तरों को बंद करना पड़ा। इसी बीच जुलाई-अगस्त माह में यूरोप-अमेरिका के कई भाग गरमी की मार से त्रस्त रहे।

विश्व मौसम विज्ञान संगठन के अनुसार, पृथ्वी उत्तरी गोलार्द्ध में अब तक की सबसे भीषण गरमी से तप रही है। अगस्त में रिकॉर्ड गरमी व तापमान दर्ज हुआ। उधर यूरोपीय जलवायु सेवा कोपरनिकस की घोषणा के अनुसार, जुलाई-अगस्त माह सबसे गरम रिकॉर्ड किए गए हैं। अगस्त औसतन से लगभग 1.5 डिगरी सेंटीग्रेड अधिक गरम रहा।

डब्ल्यूएमओ-कोपरनिकस के अनुसार, पिछले साल जुलाई में भी गरमी के सभी रिकॉर्ड टूटे हैं। जुलाई में विश्व का औसत तापमान 16.95 डिगरी सेंटीग्रेड रहा, जो 2019 में सर्वाधिक औसत तापमान से एक-तिहाई डिगरी अधिक है। वैश्विक तापमान का रिकॉर्ड एक डिगरी के 100वें या 10वें अंतर से टूटा, अतः यह अंतर असामान्य है।

कोपरनिकस की निदेशक कार्लो बूनटेम्पो व उपनिदेशक समांथा बर्गेस के अनुसार, यह तापमान गंभीर परिणामवाला बताया गया है। कोपरनिकस के अनुसार जुलाई, 2023 का औसत तापमान 1991 से लेकर 2020 तक के औसत तापमान से 0.7 डिगरी अधिक दर्ज किया गया। विश्व के समुद्रों का तापमान पिछले 30 वर्ष के

मुकाबले आधा डिगरी अधिक दर्ज किया गया और उत्तरी अटलांटिक महासागर का औसत तापमान से 1.05 डिगरी अधिक गरम रहा। अंटार्कटिक सागर में इस वर्ष औसत से 15 प्रतिशत कम समुद्री बरफ जमी।

सितंबर के दूसरे सप्ताह में लीबिया में भीषण तूफान और मूसलाधार बारिश के कारण दो बाँध ध्वस्त हो गए, जिसकी चपेट में आए डेरना शहर में तबाही का मंजर देखने को मिला। उत्पन्न त्रासदी को लोगों ने बाढ़ नहीं, सुनामी कहकर घोषित किया, जिसमें हजारों लोग गायब थे, दस हजार मृत पाए गए और लाखों लोग बे-घर हो गए।

इस तरह जलवायु-परिवर्तन एक सच्चाई के रूप में प्रत्यक्ष है, जिसके घातक प्रभाव विश्वभर में भयावह दृश्य प्रस्तुत कर रहे हैं। वर्ष 2023 इसका साक्षी रहा है। यह गंभीर विचार मंथन का भी समय है। अधिकांशत: प्राकृतिक आपदाएँ मानवनिर्मित मानी जा रही हैं। यह मिल-जुलकर विचार करने का समय है कि प्रकृति को साथ लेकर विकास से लेकर सहअस्तित्व को कैसे सुनिश्चित किया जाए, नहीं तो भविष्य में और गंभीर परिणाम हमारा इंतजार कर रहे हैं, जिनकी विकरालता-भयावहता की अभी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। ❑

एक गाँव में दो भाई रहते थे। उनके बीच सहज बँटवारा हुआ, पर सोने की एक अँगूठी को लेकर दोनों के मध्य विवाद हो गया। विवाद के बढ़ने पर दोनों अपनी समस्या लेकर एक संत के पास पहुँचे।

संत बोले—"अपनी अँगूठी यहीं रख जाओ और कल आना।" उनके जाने के बाद संत ने सुनार को बुलाकर उस अँगूठी की प्रतिलिपि तैयार करने को कहा और उसका मूल्य स्वयं के पास से चुका दिया। दूसरे दिन दोनों भाइयों के लौटने पर उन्होंने एक-एक अँगूठी दोनों को दे दी।

दोनों को ही यह लगा कि मात्र उसी के पास अँगूठी है, इसलिए दोनों प्रसन्न होकर अपने-अपने घरों को लौट गए तथा दोनों के मध्य संबंध भी सुधर गए। एक दिन आपसी चर्चा में सत्य पता चलने पर वे संत के पास पहुँचे और उनसे ऐसा करने का कारण पूछा। संत बोले—"सोना तो तुच्छ चीज है, संबंधों का मूल्य अधिक है। उसमें कभी दूरी नहीं आनी चाहिए।"

दोनों भाइयों ने आपसी विवाद भुला दिया और अँगूठी का मूल्य संत को चुकाकर प्रेमपूर्वक रहने लगे।

संत एकनाथ का अतिथि प्रेम

अपनी निश्छल भगवद्भक्ति व गुरुभक्ति के फलस्वरूप संत एकनाथ भगवत्प्राप्ति कर चुके थे। भगवत्प्राप्ति के उपरांत वे अपने हृदय में सदैव भगवान की उपस्थिति का आभास कर आह्लादित होते थे। अपनी ब्रह्मदृष्टि से वे सर्वत्र सभी जीवों में भगवान को ही देखा करते थे। उनके लिए न कोई अपना था, न कोई पराया; न कोई शत्रु था, न कोई मित्र। वे तो समदर्शी थे और सबको समान भाव से ही देखा करते थे, पर दुष्ट प्रवृत्ति के कुछ लोग जो संत एकनाथ की ब्राह्मी भावदशा से सर्वथा अनभिज्ञ थे, वे हमेशा येन-केन-प्रकारेण उन्हें कष्ट देने, परेशान करने को तत्पर रहते थे।

एक बार एक ऐसा ही घटनाक्रम हुआ। एक बार आधी रात के समय चार प्रवासी ब्राह्मण पैठण में आए और उस गाँव में रात्रि विश्राम करने को आश्रय ढूँढ़ने लगे। तभी उनकी मुलाकात गाँव के कुछ दुष्ट लोगों से हो गई। उन दुष्ट लोगों ने संत एकनाथ को परेशान व अपमानित करने की नीयत से उन प्रवासी ब्राह्मणों से कहा कि आप लोगों के ठहरने लायक एक ही सुंदर स्थान है और वह है एकनाथ का घर। वह सामने जो मकान दिखाई पड़ रहा है, उसी में एकनाथ नाम का एक बहुत अमीर दानदाता रहता है। उसके पास ढेर सारी धन-दौलत है, हाथी-घोड़े हैं, नौकर-चाकर हैं। उसका मकान बहुत विशाल है। एकनाथ चाहे तो चार क्या सैकड़ों लोगों को अपने यहाँ आश्रय और भोजन देकर संतुष्ट कर सकता है। सुना है उसे सिद्धियाँ भी प्राप्त हैं। आप लोग वहीं जाइए।

दुष्टों से प्रेरित होकर चारों ब्राह्मणों ने संत एकनाथ का दरवाजा खटखटाया। संत एकनाथ ने स्वभावत: उन ब्राह्मणों को घर के अंदर आने को कहा। फिर एकनाथ जी ने अपनी पत्नी से कहा कि ये ब्राह्मण बहुत दूर से आए हैं और भूखे हैं, आप इनके लिए रसोई की व्यवस्था कीजिए।

उधर सात दिनों से लगातार हो रही मूसलाधार वृष्टि के कारण एकनाथ जी के यहाँ सूखा ईंधन नाममात्र का भी न बचा था। अब रसोई बने तो कैसे बने? गीली लकड़ी से रसोई बनेगी कैसे? यह सोचकर एकनाथ जी की पत्नी बड़ी चिंतित हुई। उधर उन प्रवासी ब्राह्मणों की क्षुधा-व्याकुलता से संत एकनाथ जी का चित्त बड़ा व्याकुल हो उठा। उन्होंने तत्काल अपनी पत्नी और पुत्र से कहा कि अपना यह मकान लकड़ी का ही तो है। एक मंजिल गिराकर लकड़ी इकट्ठी करो।

फिर यह सोचकर कि इसमें कुछ देर लगेगी, उन्होंने अपने पलंग की निवाड़ खोल दी और पावा-पाटी तोड़कर ईंधन प्रस्तुत कर दिया और पत्नी गिरिजाबाई को तुरंत रसोई बनाने को कहा। अतिथि भूखे भी हैं और थके भी। उधर गिरिजाबाई रसोई बनाने लगीं और संत एकनाथ ने अतिथियों की थकान दूर हो इसके लिए तुरंत पानी गरम कर उन्हें स्नान करने को दिया; क्योंकि अधिक ठंढ में ठंढे पानी से स्नान करने में उन्हें कष्ट होगा।

अतिथियों को स्नान करने को गरम पानी उन्होंने दिया। गरम पानी से स्नान करते ही उनकी थकान मिट गई। स्नान के पश्चात वे भोजन को बैठे। गिरिजाबाई ने बड़े प्रेम से, ममत्व व वात्सल्य

से भरे हृदय के साथ उन ब्राह्मणों को भोजन परोसा और एकनाथ जी ने जली हुई गरम अँगीठियाँ ब्राह्मणों के पास रखीं, जिससे उन्हें ठंढक महसूस न हो।

ब्राह्मणों ने बड़े प्रेम से भोजन ग्रहण किया और बड़े तृप्त हुए। उन्हें बड़ा संतोष हुआ। रात्रि विश्राम के पश्चात प्रातः एकनाथ जी के यहाँ से प्रस्थान करते समय उन्होंने एकनाथ जी के अतिथि प्रेम के लिए उनकी बहुत सराहना की और कहा कि अतिथियों को तृप्त करने वाले आप धन्य हैं और फिर सभी अतिथि विदा हुए।

धन्य हैं संत एकनाथ और धन्य है उनका अतिथि प्रेम, उनका अतिथि सत्कार। हमें चार लोग अच्छा कहें, हमारा नाम, यश हो, इस ख्याल से अतिथि सत्कार करने वाले अगणित लोग होते हैं, हो सकते हैं, पर संत एकनाथ जी अतिथि सत्कार अपना स्वधर्म जानकर, निष्काम बुद्धि से, देवभाव, ब्रह्मभाव से ही करते थे।

उनके सभी कर्मों में और सबके साथ उनके व्यवहार में उनके हृदय से, अंतःकरण से सच्चा प्रेमभाव ही प्रवाहित होता था। वे तो '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**' के सिद्धांतानुसार ही जगत् व्यवहार करते थे। ऐसा शुद्धभाव, प्रेमभाव, ब्रह्मभाव तो किसी साधक, संत, भक्त, ज्ञानी का ही हो सकता है। ऐसा शुद्धभाव सचमुच अन्यत्र दुर्लभ है। ऐसा अतिथि प्रेम, ऐसा अतिथि-सत्कार करने वाले सचमुच बड़े धन्य हैं, बड़भागी हैं, सच्चे भगवद्भक्त हैं, सच्चे अतिथिप्रेमी हैं। ❑

एक नदी किनारे शिव मंदिर था। वहीं पास के घाट पर धोबियों का पत्थर भी पड़ा था, जिस पर धोबी अपने कपड़े पटक-पटककर धोते थे। मंदिर में प्रतिष्ठित शिवलिंग और धोबी का पत्थर, किसी समय एक ही थे। नदी के जल के बहाव ने दोनों को अलग-अलग कर दिया और कालक्रम ने एक को शिवलिंग और दूसरे को धोबी का पत्थर बना दिया। धोबी का पत्थर आत्महीनता का अनुभव कर दुःखी रहता।

शिवलिंग को उसकी आत्मव्यथा का बोध था। वह उससे बोला— ''मित्र! तुम्हारा दुःख निरर्थक है। यह ठीक है कि मैं अपने समीप आने वालों को शांति प्रदान करता हूँ, किंतु तुम तो निर्विकार भाव से हर किसी का मैल धोते हो। तुम्हारी साधना मुझसे कहीं बढ़कर है। सत्य तो यह है कि मेरे पास आने की प्रथम कसौटी तुम्हीं हो।''

शिवलिंग के ये मधुर वचन सुनकर धोबीघाट का पत्थर गद्गद हो उठा और दुगने उत्साह से लोगों के कपड़ों के मैल को धोने लगा।

पर्व विशेष- महाशिवरात्रि

देवत्व का प्रकट रूप हैं प्रज्ञेश्वर महादेव

प्रज्ञेश्वर महाकाल का दिव्य और भव्य मंदिर देवभूमि उत्तराखंड के स्वागत द्वार कहे जाने वाले सिद्धतीर्थ हरिद्वार में स्थित है। प्राचीनकाल से सिद्ध, संत, साधकों, योगियों की बहुलता प्राप्त हरिद्वार के सप्तसरोवर क्षेत्र में; जहाँ माँ गंगा की मोक्षदायिनी सप्तधाराएँ प्रवाहित होकर सप्तर्षियों की तपश्चर्या के माहात्म्य को प्रकट करती हैं, वहीं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के आध्यात्मिक वातावरण में, परिसर के दक्षिण भाग में उत्तरमुखी शिवलिंग के रूप में प्रज्ञेश्वर महाकाल की स्थापना हुई है।

विक्रम संवत् 2059 की महाशिवरात्रि पर्व पर स्वयंभू भगवान शिव की परम चैतन्य ज्ञानशक्ति की महाप्रज्ञा के रूप में साकार विग्रह, उसी दैवी सिद्ध शिवलिंग का प्राण-प्रतिष्ठित होना देवभूमि की आध्यात्मिक चेतना का एक सुनियोजित संयोग और इस संकल्प का प्रकटीकरण है।

हिमालय की नील पर्वतमाला और बिल्व पर्वतमाला के मध्य पतितपावनी माँ गंगा का विस्तार है तथा स्थान-स्थान पर सिद्धस्थल भी प्रतिष्ठित हैं। इन्हीं में एक है महर्षि विश्वामित्र की तप:स्थली पर विनिर्मित युगतीर्थ शांतिकुंज। इस युगतीर्थ से केवल एक फर्लांग की दूरी पर उत्तर में देव संस्कृति विश्वविद्यालय का दिव्य परिसर है, जहाँ प्रज्ञेश्वर महाकाल अपनी भव्यता और सुंदरता लिए कल्याणकारी स्वरूप शिवलिंग के रूप में विराजमान हैं।

महाकाल के इस परिसर में आने की घटना भी दिव्य है। यह नर्मदेश्वर शिवलिंग है। अभी जो दिखाई देता है, वह आधार से चार फीट ऊपर है; जबकि तीन फीट नीचे आधार में आवृत है। इससे इस शिवलिंग की विशालता का सहज अनुमान लगाया जा सकता है।

माँ नर्मदा की गोद से जब इस विराट शिवलिंग की प्राप्ति हुई तो इसके साथ ही छोटे आकार के नौ और स्वयंभू शिवलिंग प्राप्त हुए। धर्मनगरी नासिक के एक सुप्रसिद्ध आश्रम को इस भव्य लिंग को सौंपा गया, लेकिन महाकाल की योजना कुछ और थी। वहाँ के प्रमुख महंत महात्मा को यह अंत:प्रेरणा मिली कि इस दिव्य दीर्घाकार पिंडी का सर्वोत्तम स्थान देव संस्कृति विश्वविद्यालय, हरिद्वार का अलौकिक परिसर है। यह गायत्री तीर्थ का ही विशेष प्रकल्प है।

गायत्री परिवार को सौंपे जाने की उपयुक्तता का भाव लिए महंत जी ने पार्थिव लिंग की संस्कार विधि संपन्न कर नासिक में ही शांतिकुंज को यह प्रतिमा सौंप दी। वहाँ से हरिद्वार तक लाने के लिए विशेष वाहनों की शोभायात्रा निकाली गई, जो मार्ग में पड़ने वाले सभी प्रमुख तीर्थों, सिद्धस्थलों से होते हुए चालीस दिनों में महाशिवरात्रि के दिन प्रात: हरिद्वार पहुँची। शोभायात्रा की झलक पाने और महाकाल के दर्शन एवं पूजन हेतु स्थान-स्थान पर लोग एकत्रित होते गए, जिसके कारण चालीस दिनों का लंबा समय लगा।

युगतीर्थ की पावनधरा पर युगदेवता के प्रतीक बनकर स्वयं महाकाल का आगमन दैवी संयोजना का प्रत्यक्ष आभास कराने वाला है। जिस स्थान पर प्रज्ञेश्वर महाकाल की प्रतिष्ठा की गई है, वहाँ

निर्माण संबंधी कार्य इस शिवलिंग की प्राप्ति से बहुत पहले ही आरंभ किया जा चुका था।

भगवान शिव के नटराज विग्रह की स्थापना की संकल्पना के साथ प्रारंभ हुए इस भव्य और दिव्य मंदिर का निर्माणकार्य जैसे ही पूरा होने को आया, ठीक उसी समय यह सुयोग घटित हुआ कि नासिक से नर्मदेश्वर स्वयंभू शिवलिंग को शांतिकुंज को सौंपे जाने और यहाँ प्राण-प्रतिष्ठित किए जाने की व्यवस्था बन गई।

ऐसा प्रतीत होता है, जैसे स्वयं महाकाल की ही यह इच्छा हो कि वे अपने कौन-से स्वरूप में यहाँ विराजमान रहेंगे; क्योंकि मंदिर तो उन्हीं की उपासना के निमित्त बनाया जा रहा था, अंतर सिर्फ प्रतिमा के स्वरूप का था, लेकिन विधाता का विधान सुनिश्चित और अटल रहता है। स्वयं उन्हीं की इच्छा से वे प्रज्ञेश्वर रूप में यहाँ प्रतिष्ठित हुए हैं—इस बात में जरा भी संदेह नहीं किया जा सकता है। यह प्रज्ञेश्वर महाकाल की विलक्षणता है एवं शिव संकल्प से प्रादुर्भूत सिद्ध शिवलिंग के रूप में ज्ञानाग्नि का प्रकटीकरण है, जो समस्त संसार के तम, अंधकार, अज्ञान और कष्ट का निवारण करने वाली एकमात्र उपास्य शक्ति है।

प्राकृतिक सौंदर्य और संरचना की दृष्टि से प्रज्ञेश्वर महाकाल मंदिर का परिसर अद्‌भुत-अद्वितीय है। चारों ओर हरे-भरे पेड़ों से आच्छादित सुरम्य वातावरण में विशाल वृत्ताकार स्वरूप में यह मंदिर विनिर्मित है। बाह्य परिक्रमा मार्ग पर चारों ओर शिव तत्त्व की महत्ता को प्रदर्शित करने वाली आकृतियाँ एवं भगवान शिव के द्वादशलिंगों की प्रस्तुति है। भीतर की ओर गर्भगृह के चारों ओर विस्तीर्ण सीढ़ीनुमा संरचना है, जिस पर हजारों की संख्या में साधक एवं श्रद्धालुगण बैठकर जप-तप, उपासना-ध्यान आदि कर सकते हैं। चारों दिशाओं में दो-दो की संख्या में ध्यान केंद्र हैं।

मुख्य मंदिर में सुंदर नंदी एवं कच्छप की प्रतिमा विराजित है, जो ठीक प्रज्ञेश्वर शिवलिंग की ओर उन्मुख गर्भगृह के पश्चिम भाग, जहाँ से प्रवेश द्वार है, में स्थित है। बाह्य परिसर से गर्भगृह की ओर जाने वाले प्रवेश मार्ग पर पुष्पगुच्छ से भरी लताओं के तोरण द्वार और प्राकृतिक शिवलिंग एवं गणेश जी की आकृतियाँ हैं, जिन्हें झाड़ीनुमा पौधों की कटिंग कर आकार दिया गया है।

यहाँ की पवित्रता, सुंदरता और नैसर्गिकता सभी आने वाले श्रद्धालुओं का मन मोह लेती हैं। शांत, सौम्य, सुरम्य और दैवी सुगंध से युक्त प्रज्ञेश्वर महाकाल के पास जो एक बार पहुँच जाता है, वह बार-बार यहाँ आने के लिए लालायित रहता है। यहाँ की आध्यात्मिक आभा और प्राकृतिक सुषमा साधक-श्रद्धालु की अंतश्चेतना को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है।

उत्तराखंड राज्य के महामहिम राज्यपाल लेफ्टिनेंट जनरल गुरमीत सिंह (सेवानिवृत्त) जब पहली बार देव संस्कृति विश्वविद्यालय पधारे और प्रज्ञेश्वर महाकाल के दर्शन कर इसके महत्त्व की अनुभूति प्राप्त की तब उन्होंने राज्य की सुख-समृद्धि और शांति की कामना की। साथ ही यह भी इच्छा व्यक्त की, कि प्रज्ञेश्वर महाकाल की स्थापना देहरादून स्थित राजभवन में भी हो जाए तो राज्य के कल्याण और खुशहाली के लिए अत्यंत उत्तम होगा।

उनकी भावना का सुफल यह रहा कि विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी एवं उनके साथ विज्ञ पंडितों द्वारा राजभवन में विधिपूर्वक शिवलिंग के रूप में राजप्रज्ञेश्वर महाकाल की स्थापना की गई है।

उल्लेखनीय है कि देहरादून के राजभवन में जो शिवलिंग स्थापित है, वह देव संस्कृति विश्वविद्यालय में स्थापित नर्मदेश्वर शिवलिंग के साथ प्राप्त हुए नौ शिवलिंगों में से ही एक है। राजभवन के राजप्रज्ञेश्वर महाकाल की भी वही महत्ता और विशेषता है, जो विश्वविद्यालय में स्थित महाकाल की है।

यह भी प्रज्ञेश्वर शिवलिंग की भाँति बाणलिंग है। नर्मदा जी से स्वयंभू रूप में प्राप्त होने वाले शिवलिंगों को शास्त्रों में बाणलिंग कहा गया है। वर्तमान में विश्वेश्वर के रूप में प्रतिष्ठित शिवलिंग भी बाणलिंग ही है।

साधना-उपासना की सुदीर्घ परंपरा में शिवलिंगों के कई प्रकारों और स्वरूपों का उनकी महत्ता के साथ उल्लेख मिलता है, जैसे केदारेश्वर आदि स्वयंभू लिंग, स्वर्णादि धातु से विनिर्मित लौह शिवलिंग आदि।

जिन लिंगों की उपासना से किसी साधक ने सिद्धि प्राप्त की है अथवा जो सिद्धपुरुषों द्वारा प्रतिष्ठित हैं, उन्हें सिद्धलिंग कहा जाता है तथा जो माँ नर्मदा से प्राप्त होते हैं उन्हें बाणलिंग या नर्मदेश्वर शिवलिंग के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता है। प्रज्ञेश्वर और इसके साथ के सभी नौ शिवलिंग नर्मदेश्वर शिवलिंग हैं। ये सभी स्वयंभू, स्वयंसिद्ध शिवलिंग हैं।

प्रज्ञेश्वर महाकाल की देवभूमि में स्थापना की घटना स्वयं में कई रहस्य और भवितव्यता समेटे हुए है। इसके सूत्र-संकेतों को यदि कोई समझना चाहे तो उन्हें परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी के द्वारा जून, 1967 की अखण्ड ज्योति में लिखा गया—'महाकाल का संकल्प' नामक लेख पढ़ना चाहिए और अपनी चिंतन-चेतना को उस दिशा में गति करने की प्रेरणा देनी चाहिए।

वे लिखते हैं—'सतयुग को लाने वाले इस कलियुग में देवता—देवाधिदेव तंत्राधिपति महादेव ही हैं। वे परम करुणा वाले और मंगलमय हैं। अभी महाकाल की शक्ति एक भावना-प्रवाह के रूप में गतिशील होकर पिछले हजारों वर्षों की कलंक-कालिमा को धोकर मानवता का मुख उज्ज्वल करने में संलग्न है। काल की चाल बदलने की सामर्थ्य केवल महाकाल में है।'

आज प्रतिभाशालियों का वर्ग सृजन में न लगकर विनाश में लग रहा है और सत्प्रवृत्तियाँ मूर्च्छित पड़ी हैं। इनकी जाग्रति और सही मार्ग के लिए प्रज्ञापुरुष के रूप में महाकाल की उपासना ही युग की माँग है।

अध्यात्म जगत् में गति करने वाले साधना-क्षेत्र के विज्ञ लोग इस तथ्य एवं सत्य को बखूबी जानते हैं कि महाकाल की ज्ञानाग्नि शक्ति का प्रज्ञेश्वर रूप में प्रकटीकरण—सृष्टि विकास का अनिवार्य सोपान है। भौतिक से प्राणिक, प्राणिक से मानसिक, मानसिक से आत्मिक और आत्मिक से आध्यात्मिक विकास की यात्रा तक एक क्रमिक सोपान है। मानसिक और बौद्धिक विकास का युग तो हम सब देख ही रहे हैं। अब आगे की विकासयात्रा मानसिक से आत्मिकी में गति की है, जिसके लिए बुद्धि का प्रज्ञाशक्ति में रूपांतरण होना एक अनिवार्य प्रक्रिया है।

व्यष्टि और समष्टि—दोनों स्तर पर प्रज्ञा की प्रतिष्ठा का निमित्त बनकर ही महाकाल का प्राकट्य हुआ। महाकाल की क्रियाशक्ति से सृष्टि की उत्पत्ति, संहारशक्ति रुद्र से सृष्टि का प्रलय और ज्ञानशक्ति प्रज्ञा से सृष्टि का संपूर्ण विकास संभव होता है। ज्ञान, बुद्धि का क्षेत्र है और बुद्धि की शुद्धतम, पवित्रम व सर्वोच्च स्थिति को ही प्रज्ञा कहा जाता है। समष्टि स्वरूप में प्रज्ञा तत्त्व की विराटता,

असीमता को सविता शक्ति के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त है। सूर्य सविता शक्ति का ही प्रतीक है और इसकी उपासना का मंत्र गायत्री है।

प्रज्ञेश्वर महाकाल का आध्यात्मिक मर्म अत्यंत सूक्ष्म है। स्वयं महाकाल, काल भी जिनके वश में है, कालचक्र की गति और परिवर्तन की नियामक सत्ता हैं। प्रज्ञेश्वर महाकाल धरती के जीवन का, मानव-आत्मा के विकास का अनिवार्य सोपान हैं। स्थूल-से-सूक्ष्म और सूक्ष्म-से-कारणभूत तत्त्व की यात्रा का प्रत्यक्षीकरण हैं।

नए युग के प्रकटीकरण का अनिवार्य और अमिट पदचिह्न है—प्रज्ञेश्वर। गायत्री के सिद्धसाधक आचार्य जी ने स्वयं अपनी साधना, सिद्धि और सामर्थ्य को 'प्रखर प्रज्ञा' के प्रतीक रूप में स्थापित कर 'महाकाल की युग प्रत्यावर्तन प्रक्रिया' नामक ग्रंथ में विस्तृत चर्चा की है।

तत्त्ववेत्ताओं, सिद्धों, योगियों की दृष्टि असाधारण व समग्र होती है, इसलिए वे संपूर्णतया जीवन और जगत् के विधान के मर्म को सूक्ष्मता से जानते हैं। समय-समय पर कालचक्र की प्रमुख घटनाओं का संकेत भी करते हैं और विश्वमानवता से इस ओर जागरूक होने का आह्वान भी करते हैं। काल की वस्तुस्थिति के अनुरूप भी उनकी युगधर्म की व्याख्या भी होती है और उस पर चलने का मार्ग भी उन्हीं के द्वारा प्रशस्त किया जाता है। यह युग प्रज्ञायुग है। महाकाल की ज्ञानशक्ति की साधना, उपासना और आह्वान इस युग की माँग है।

प्रज्ञा ज्ञान का शिखर है, शिव का तीसरा नेत्र है। कामवासना को, अविद्या-अज्ञान को भस्म कर देने वाली रुद्राग्नि है। यही सूर्य, सविता, विश्वचेतना और शिव के अग्निपिंड का पर्याय प्रतीक है। शिव तत्त्व के दो रूप हैं—एक मूल प्रकृति अपरा और दूसरी दैवी प्रकृति, जिसे परा चैतन्य शक्ति रूप कहा जाता है।

शिव, जो परा चैतन्य रूप हैं—वे ही चिन्मय आदिपुरुष शिवलिंग हैं तथा उन्हीं से विश्व की उत्पत्ति हुई है। चराचर जगत् की उत्पत्ति के वे ही लिंग अर्थात कारण हैं। दैवी प्रकृति परा से उत्पन्न सृष्टि को संचालित करने का आधार हैं। मूल प्रकृति अपरा शक्ति हैं। शिवलिंग परा चैतन्य प्रकृति है और जिस पर लिंग स्थापित रहता है, वह आधार सृष्टि प्रसूता मूल प्रकृति—अपरा शक्ति हैं।

पूज्य गुरुदेव ने इसको सविता शक्ति और सावित्री शक्ति कहा है। शिव-पार्वती का युग्म यही है। शिवलिंग में समूची सृष्टि की उत्पत्ति, विकास और लय का रहस्य विद्यमान है। पराशक्ति रूप में शिवलिंग पर अहर्निश जलधारा (गंगा का प्रतीक) टपकती रहती है।

जलधारा का प्रतीक ज्ञान-गंगा है, जिसे दिव्यलोकों में ऋतंभरा प्रज्ञा, दिव्य बुद्धि और गायत्री कहा गया है। शिव का तीसरा नेत्र भी यही है। दिव्य ज्ञानचक्षु के रूप में प्रत्येक मनुष्य के भीतर भी ये विद्यमान है।

गायत्री शक्ति शिव के इसी परम चैतन्य (सविता) आदर्श को ग्रहण कर सृष्टि-कार्य में लक्ष्य बनाती है और इसी ओर साधकों को प्रवृत्त करती है। योग-अध्यात्म की साधनाओं में भी यह तीसरा नेत्र आज्ञाचक्र के रूप में ज्ञानचक्षु के रूप में उपास्य है। आज्ञाचक्र की सिद्धि का तत्त्व बीज भी ओऽम् है, गति—नाद है और अधिपति देव—सदाशिव हैं।

इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना के मिलन स्थान के कारण यही आत्मा के ज्ञान में स्नान की त्रिवेणी है—तीर्थराज है। इसमें स्नान से भव-बंधन के सारे

मल-विक्षेप धुल जाते हैं। यहाँ पहुँचने पर साधक की आत्मा में वह चेतना प्रकाशित हो उठती है, जिसे स्थितप्रज्ञता, स्फुट-प्रज्ञालोक, प्रज्ञाप्रसाद, ऋतंभरा प्रज्ञा, दिव्य चक्षु, तृतीय नेत्र अथवा ज्ञानचक्षु जैसे अनेकों नामों से पुकारा गया है। महर्षि व्यास का कथन है—

'प्रज्ञाप्रासादमारुह्याशोच्यः शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थः सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति॥'

अर्थात जिस प्रकार पहाड़ की चोटी (शिखर) पर खड़ा होने वाला नीचे के सभी दृश्यों को देखता है, उसी प्रकार प्रज्ञारूप प्रासाद (महल-अटारी) पर सुशोभित प्राज्ञ (योगी) संसार के शोक-संत्रास में पड़े अज्ञानी जनों को देखता है।

ज्ञान अर्थात प्रज्ञा के द्वारा जो आत्मा अभिसिंचित और प्रकाशित होती है, उस आत्मा की दिशा को आद्यप्रकृति अपने चरमलक्ष्य की दिशा में अर्थात परमात्मा के लोक में भेज देती है। किसी भी शिवालय में शिवलिंग पर चढ़ाया गया जल उसके आधार पर पहुँचकर उत्तर दिशा में प्रवाहित हो जाता है।

उत्तर दिशा जीवन के परम सत्य (ध्रुव), परम गति, परम लक्ष्य की प्रतीक है। जल को इस दिशा में भेजने का कार्य शिव की ही आधार शक्ति मूल प्रकृति, जिसे शिवलिंग की मूर्ति में पीठम् के रूप में दरसाया जाता है, द्वारा संभव होता है। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के महाकाल के प्रज्ञेश्वर रूप में समूची व्यष्टि-समष्टि के परम कल्याण का तत्त्वविज्ञान समाहित है।

वर्तमान युग की समस्त समस्याओं, संकटों और पीड़ाओं का मुख्य कारण मानवीय बुद्धि की दिशा का प्रज्ञोन्मुख न होना है। मानव जाति का बुद्धितत्त्व भोगवाद, स्वार्थवाद, अहं, वासना-कामना की दलदल में फँसकर हर तरह से समस्या उत्पन्न करने का कारक बन बैठा है। ऐसे में प्रज्ञा की साधना ही उसका परम कल्याण कर सकती है। प्रज्ञेश्वर महाकाल की साधना-उपासना का यही मर्म है। विश्व मानवता के, समस्त मानव जाति के सार्वभौमिक कल्याण का एकमात्र मार्ग शिवत्व की ओर गति है और प्रज्ञेश्वर इस मार्ग की प्रेरणा, प्रकाश और शक्ति के साकार महादेव हैं। ❑

महाबली रावण ने माता जानकी को धोखे से बंदी बना लिया। माँ ने स्वयं को अशोक वाटिका में सीमित कर लिया, परंतु रावण उनको मोहित करने के उद्देश्य से भाँति-भाँति के रूप धारण करके उनके पास जाता। वे सारे उपाय विफल गए और माता जानकी ने भगवान श्रीराम के अतिरिक्त और किसी पर कोई ध्यान नहीं दिया। यह देख रावण के एक मंत्री ने रावण को सुझाव दिया—''महाराज! आप क्यों न राम का वेश धरकर सीता से मिलें, तब तो उन्हें आपकी ओर देखना ही पड़ेगा।''

रावण बोला—''तुम्हें क्या लगता है कि यह विचार मेरे मन में नहीं आया होगा? तुच्छं ब्रह्मपदं, परवधूसंगः कुतः—जब राम का रूप धारण करता हूँ तो मेरा मन भी वैसा ही हो जाता है। उनका रूप धरते ही ब्रह्मपद भी तुच्छ नजर आता है, फिर परायी स्त्री की तो बात ही क्या है?'' जिनका रूप धारण करने मात्र से मन के भाव शुद्ध हो जाते हैं, उनका ध्यान सही में धरने से क्या होगा, यह तो भक्त ही जानते हैं।

सादा जीवन-उच्च विचार

सादा जीवन-उच्च विचार ऋषिप्रणीत श्रेष्ठ मार्ग है, जिसकी महिमा का हर युग में गान किया जाता रहा है। हालाँकि इसकी यथार्थ समझ समय के साथ ही विकसित होती है। जीवन की प्रारंभिक अवस्था में, जवानी में तड़क-भड़क, कुछ फैशनबाजी, महँगे शौक प्राय: जीवन के अंग रहते हैं, लेकिन समय के साथ जब सोच परिपक्व होती है, जीवन के तत्त्व का बोध होता है तो समझ आता है कि बाहरी दिखावे, प्रभाव तथा प्रदर्शन में कोई सार तत्त्व नहीं। हलकापन, खालीपन व अशांति ही इनसे जुड़े हुए रहते हैं।

जीवन का सार सरलता व सादगी में छिपा हुआ है, जो उच्च विचार से जुड़ा हुआ है। शांति-सुकून के साथ रहते हुए जीवन में यदि कुछ सार्थक कार्य करना है, समाज की सेवा करनी है और आत्मलाभ अर्जित करना है, तो वह सादा जीवन-उच्च विचार के आधार पर ही संभव होता है अन्यथा मनुष्य की इच्छाओं, कामनाओं व महत्त्वाकांक्षाओं का कोई अंत नहीं।

इनको पूरा करते-करते जीवन का सर्वस्व भी झोंक दिया जाए तो भी पूरा नहीं पड़ता। सारा समय, मनोयोग व जीवन की ऊर्जा इन्हीं में खप जाते हैं और कोई सार्थक कहा जाने योग्य कार्य ऐसे में संभव नहीं हो पाता। जीवन का अंत एक खालीपन, एक शून्यता तथा निरर्थकता के बोध के साथ होता है और बहुमूल्य मानव जीवन का ऐसा त्रासद अवसान एक दुर्घटना ही कही जाएगी।

यह आज की नहीं, हर युग की कहानी रही है, इसलिए जितने भी महान व्यक्ति, सफल इनसान हुए, जिन्होंने जीवन में कुछ सार्थक कार्य किए, समाज व मानवता के हित में बहुमूल्य योगदान दिए, वे सभी जीवन के एक निर्णायक मोड़ पर सरलता व सादगी भरे श्रेष्ठ जीवन की ओर मुड़े तथा सामान्य इनसान से महामानव, देवमानव की श्रेणी में गिने गए।

आज से अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व राजकुमार सिद्धार्थ अपने राजसी वैभव को त्यागकर जंगल में तप करने चले गए और महात्मा बुद्ध, भगवान बुद्ध बनकर शांति, करुणा और निर्वाण के संदेश का प्रसार कर सके। इसी तरह वर्धमान महावीर की कहानी है, जिन्होंने राजसी ठाठ-बाट छोड़कर अहिंसा व तप के मार्ग का वरण किया और अंतत: जीवन में प्रसन्नता, शांति व समाधान के आधार— सादा जीवन-उच्च विचारप्रधान अहिंसा मार्ग का प्रसार भी किया।

मध्य युग में कबीर, नानक, सूर, तुलसी, दादू, नामदेव जैसे संतों की पूरी शृंखला सादा जीवन-उच्च विचार की हिमायती रही। इस युग में रामकृष्ण परमहंस, महर्षि रमण एवं परमपूज्य गुरुदेव न्यूनतम में निर्वाह करने के जीवंत उदाहरण रहे, जो यही साबित करते रहे कि बाह्य चकाचौंध में कुछ तत्त्व नहीं, वास्तविक संपदा आंतरिक है, जो सादा जीवन-उच्च विचार से जुड़ी हुई है।

बैरिस्टर मोहनदास करमचंद गांधी से महात्मा गांधी बनने तथा एक धोती लपेटकर ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेने की कहानी इसी का प्रताप बयान करती है। सरदार पटेल सादगी की प्रतिमूर्ति थे, जो अपना फटा कपड़ा स्वयं सिलते थे। महर्षि अरविंद पूर्व जीवन में इंग्लैंड से पढ़े चूड़ांत विद्वान, अपने समय के शीर्ष राजनीतिक विचारक व नेता, कॉलेज

के प्रोफेसर व प्रिंसिपल थे, लेकिन उनका जीवन सादगी की मिसाल था।

बड़ौदा की सार्वजनिक सेवा के दिनों में उच्च पद पर रहते हुए उन्हें जो वेतन मिलता, उससे घर की आवश्यक सामग्री तथा पुस्तकें आदि खरीदते। शेष धन जरूरतमंदों के हित में नियोजित करते। उनका मानना था कि धन ईश्वरीय देन है, वह उन्हीं के कार्यों में नियोजित होना चाहिए। अपने लिए न्यूनतम में निर्वाह और शेष समाजरूपी ब्रह्म के नाम, यह उनका प्रेरक वाक्य था।

अब्राहम लिंकन अमेरिका के राष्ट्रपति होते हुए भी सादा जीवन जीते थे, स्वयं अपना काम करते थे। उनके घर में कोई नौकर-चाकर नहीं थे। अब्दुल कलाम आजाद, इतने बड़े अंतरिक्ष वैज्ञानिक और भारत के राष्ट्रपति होते हुए भी सादा जीवन-उच्च विचार का उदाहरण थे और जब उन्होंने शरीर छोड़ा तो विरासत में कुछ जोड़े कपड़े, पुस्तकें व मेडल आदि ही उनके पास थे। अमेरिका के ही मनीषी—संत इमर्सन व उनके शिष्य अमेरिका के आदर्श पुरुष थोरो न्यूनतम में निर्वाह से भरे सादा एवं श्रेष्ठ जीवन के हिमायती रहे।

आज ऐसे हजारों विदेशी लोगों के उदाहरण मिलेंगे, जो लाखों-करोड़ों के पैकेज छोड़कर भारतीय संस्कृति को अपना रहे हैं। सुख-भोग के चरम से असंतुष्ट ये लोग मन की शांति की खोज में विभिन्न आध्यात्मिक संगठनों से जुड़ रहे हैं। अखिल विश्व गायत्री परिवार में भी ऐसे लाखों-करोड़ों परिजन परमपूज्य गुरुदेव, वंदनीया माताजी के सूत्रों के अनुरूप सादा जीवन-उच्च विचार को अंगीकार कर रहे हैं और अपनी क्षमता व योग्यता के अनुरूप समाज की भावभरी सेवा कर रहे हैं।

अपनी आत्मकथा हमारी वसीयत और विरासत में परमपूज्य गुरुदेव जीवन के निचोड़ को तीन सूत्रों में स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—'**मातृवत् परदारेषु**', '**परद्रव्येषु लोष्ठवत्**' एवं '**आत्मवत् सर्वभूतेषु**'। इनमें दूसरा, सादा जीवन का ही सूत्र है, जिसके साथ उच्च विचार जुड़ने पर शेष दो सूत्र संभव होते हैं और फिर सादा जीवन का उच्च विचार से सीधा संबंध है। जहाँ सादगी होगी, वहीं उच्च संभावनाएँ साकार होंगी तथा जहाँ उच्च विचार होंगे, वहीं सादा जीवन संभव होगा।

गुरुदेव के शब्दों में—"यह अनुमान गलत निकला कि ठाठ-बाट से रहने वालों को बड़ा आदमी समझा जाता है और गरीबी से गुजारा करने वाले उद्विग्न, अभागे, पिछड़े पाए जाते हैं। हमारे संबंध में यह बात कभी लागू नहीं हुई। आलस्य और अयोग्यतावश गरीबी अपनाई गई होती, तो अवश्य वैसा होता, पर स्तर उपार्जन योग्य होते हुए भी यदि सादगी का हर पक्ष स्वेच्छापूर्वक अपनाया गया है, तो उसमें सिद्धांतों का परिपालन ही परिलक्षित होता है।

"जो भी अतिथि आए, जिन भी मित्र-संबंधियों को रहन-सहन का पता चलता रहा, उनमें से किसी ने भी इसे दरिद्रता नहीं कहा, वरन ब्राह्मण परंपरा का निर्वाह ही माना। मिर्च न खाने, खड़ाऊँ पहनने जैसे एकाध नियम सादगी के नाम पर अपनाकर लोग सात्त्विकता का विज्ञापन भर करते हैं। वस्तुतः आध्यात्मिकता निभती है—सर्वतोमुखी संयम और अनुशासन से। उसमें समग्र जीवनचर्या को ब्राह्मण जैसी बनाना एवं अभ्यास में उतारने के लिए सहमत करना होता है। यह लंबे समय की और क्रमिक साधना है। हमने इसके लिए अपने को साधा है और जो भी अपने साथ जुड़े रहे, उन्हें सधाया है।"

इस तरह सादा जीवन-उच्च विचार वास्तव में अध्यात्म के व्यावहारिक स्वरूप का वह पहलू है, जो आध्यात्मिकता के जीवन में समाविष्ट होने पर सहज रूप से अंग बनता है और इसके लिए निस्संदेह रूप से साधनात्मक स्तर की तत्परता एवं संवेदनशीलता का निर्वाह करना पड़ता है, तभी यह संभव हो पाता है। ❑

मामेकं शरणं व्रज

जब मनुष्य चारों ओर से संकटों से घिर जाता है, जब उसके जीवन में चहुँओर अँधेरा-ही-अँधेरा होता है, तब वह अपनी शक्ति व सामर्थ्य से उन संकटों से बाहर निकल आने का भरसक प्रयास करता है, पर जब उसकी शक्ति, सामर्थ्य जवाब देने लगते हैं तब वह सर्वप्रकार से स्वयं को बेसहारा पाता है, असमर्थ पाता है और अंततः भगवान को याद करता है, वह भगवान की शरण चाहता है; क्योंकि तब वह यह मान लेता है कि अब एकमात्र भगवान ही आसरा हैं, भगवान ही सहारा हैं और वे ही मुझे सभी प्रकार के संकटों से मुक्त कर सकते हैं। उसी प्रकार जब कोई साधक ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग आदि विभिन्न साधनों के सहारे भी भगवत्प्राप्ति नहीं कर पाता, तब अंततः उसके लिए भगवान की शरणागति ही एकमात्र उपाय होता है।

अस्तु संकटों से घिरा हुआ कोई मनुष्य हो अथवा बार-बार साधना में असफल हो रहा कोई साधक सिर्फ भगवान का ही आसरा होता है। इसलिए वह भगवान की शरणागति पाने को आकुल-व्याकुल हो उठता है और तब उसके मन व हृदय से अंततः भगवद्शरणागति के ये दिव्य भाव प्रस्फुटित हो उठते हैं—

शरण में आए हैं हम तुम्हारी,
दया करो हे दयालु भगवन्।
सँभालो बिगड़ी दशा हमारी,
दया करो हे दयालु भगवन्।
न हम में बल है, न हम में शक्ति।
न हम में साधन, न हम में भक्ति।
दया करो हे दयालु भगवन्।
शरण में आए हैं हम तुम्हारी,
दया करो हे दयालु भगवन्।
जो तुम पिता हो, तो हम हैं बालक।
जो तुम हो स्वामी, तो हम हैं सेवक।
जो तुम हो ठाकुर, तो हम पुजारी।
दया करो हे दयालु भगवन्।
शरण में आए हैं हम तुम्हारी,
दया करो हे दयालु भगवन्।
भले जो हैं हम, तो हैं तुम्हारे।
बुरे जो हैं हम, तो हैं तुम्हारे।
तुम्हारे होकर भी हम दुखारी,
दया करो हे दयालु भगवन्।
शरण में आए हैं हम तुम्हारी,
दया करो हे दयालु भगवन्।
शरण में आए हैं हम तुम्हारी,
दया करो हे दयालु भगवन्।
सँभालो बिगड़ी दशा हमारी,
दया करो हे दयालु भगवन्।

उपरोक्त गीत में सचमुच शरणागति के सच्चे भाव गुँजरित हो रहे हैं, जिसमें संकटों से घिरे मनुष्य एवं स्वयं की साधना के सहारे भगवान को पाने में असमर्थ शिष्य व साधक के मन में भगवद्शरणागति पाने की परम आकुलता व व्याकुलता अपने चरम पर है और जब मनुष्य में, शिष्य में, साधक में भगवद्शरणागति की परम व्याकुलता अपनी चरम तक जा पहुँचती है, तब भगवान को भी उसे अपनी शरण में लेने को बाध्य होना पड़ता है, क्योंकि भगवान शरणागतवत्सल

हैं। वे अपनी शरण में आए हुए की उपेक्षा कर ही नहीं सकते, पर शर्त यही है कि शरणागति पूर्णरूपेण सच्ची होनी चाहिए।

शरणागति कोई शब्द मात्र नहीं है, जिसका उच्चारण कर लेने मात्र से भगवान की शरणागति प्राप्त हो सकती है। शरणागति तो आत्मदान है, आत्मसमर्पण है शिष्य का, साधक का भगवान के चरणों में।

वेद, उपनिषद्, पुराण, गीता, रामायण, रामचरितमानस आदि धर्मग्रंथों में स्वयं भगवान ने इस बात की उद्घोषणा की है कि अपनी शरण में आए हुए की मैं कभी उपेक्षा नहीं करता। वाल्मीकि रामायण में परमोदार शरणागतवत्सल भगवान स्वयं इसकी प्रतिज्ञा करते हैं। जब विभीषण अपना सब कुछ त्यागकर भगवान की शरण में आते हैं तो भगवान कहते हैं—

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥

—वाल्मीकि रामायण, युद्धकांड (18.33)

अर्थात जो एक बार भी मेरी शरण में आकर 'मैं शरणागत हूँ', 'मैं आपका हूँ' ऐसी प्रार्थना करता है, उसको मैं सर्वभूतों से अभय कर देता हूँ। ऐसी मेरी प्रतिज्ञा है। यह मेरा व्रत है। भगवान ने गीता में पहले कर्मयोग, उसके बाद ज्ञानयोग और फिर भक्तियोग की विस्तृत व्याख्या की। सभी प्रकार के योगों (भगवत्प्राप्ति के साधनों) के बारे में भगवान के उपदेश सुनने के पश्चात भी जब अर्जुन ने अपनी असमर्थता व्यक्त की तो भगवान ने आखिर में अर्जुन को शरणागति का उपदेश देते हुए कहा—

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

—गीता *18.66*

अर्थात संपूर्ण धर्मों को अर्थात संपूर्ण कर्त्तव्यकर्मों को मुझमें त्यागकर तू केवल एक मुझ सर्वशक्तिमान, सर्वाधार परमेश्वर की शरण में आ जा। मैं तुझे संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर, चिंता मत कर।

उपरोक्त श्लोक से पूर्व के श्लोकों व अध्यायों में भगवान ने अनेक प्रकार के योग बताए हैं। उन्होंने परब्रह्म का ज्ञान, परमात्मा का ज्ञान, संन्यास का ज्ञान, इंद्रिय व मन का संयम, ध्यान आदि के विषय में बताया है। इस प्रकार उन्होंने अनेक धर्मों व विधियों के विषय में अर्जुन को उपदेश किया है, पर 18वें अध्याय के 66वें श्लोक में वे भगवद्गीता का सार प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि हे अर्जुन! अभी तक बताई गई विधियों, धर्मों, उपायों का अभ्यास करने में यदि तुम स्वयं को असमर्थ पाते हो, तो उन सारी विधियों का परित्याग करके तुम, अब केवल मेरी शरण में आ जाओ। मैं तुम्हें संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तुम्हारा उद्धार कर दूँगा। इस तरह भगवान अर्जुन को शरणागति पाने को प्रेरित कर रहे हैं और स्वयं अर्जुन को रक्षा का वचन दे रहे हैं।

वहीं अपनी शरण में आए हुए शरणागत की रक्षा करने की प्रतिज्ञा करते हुए शरणागतवत्सल भगवान श्रीराम रामचरितमानस में कहते हैं—

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू।
आएँ सरन तजउँ नहिं ताहू॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

अर्थात भगवान कहते हैं कि जिसे करोड़ों ब्राह्मणों की हत्या का पाप लगा हो, शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। जीव ज्यों ही मेरे सम्मुख होता है, त्यों ही उसके करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं।

शरणागत की रक्षा करने के कारण ही तो भगवान ने असंख्य जीवों का उद्धार किया है। '**गजेंद्र मोक्ष स्तोत्र**' के अनुसार जब गजेंद्र नाम के गज को सरोवर में एक ग्राह (मगरमच्छ) ने पकड़ लिया, गज के पैर को अपने मुख में लेकर लहूलुहान कर दिया तो गज ने ग्राह से अपने पैर को छुड़ाने का बहुत प्रयास किया, पर जब अपनी शक्ति काम न आई, तब वह गजराज अपने पूर्वजन्म में सीखकर कंठस्थ किए हुए भगवान के एक स्तोत्र का मन-ही-मन पाठ करने लगा और कहने लगा कि 'जिनकी चेतना को पाकर ये जड़ शरीर और मन आदि भी चेतन बन जाते हैं, ओउम् शब्द के द्वारा लक्षित तथा संपूर्ण शरीर में प्रकृति एवं पुरुष रूप से प्रविष्ट हुए उन सर्वसमर्थ परमेश्वर को हम मन-ही-मन नमन करते हैं। जिनके सहारे यह विश्व टिका है, जिन्होंने इसकी रचना की है और जो स्वयं ही इसके रूप में प्रकट हैं, फिर भी जो इस दृश्य जगत् से एवं इसकी कारणभूता प्रकृति से सर्वथा परे एवं श्रेष्ठ हैं, उन अपने आप, बिना किसी कारण के बने हुए भगवान की मैं शरण लेता हूँ। अपनी संकल्प शक्ति के द्वारा अपने ही स्वरूप में रचे हुए और इसीलिए सृष्टिकाल में प्रकट और प्रलयकाल में उसी प्रकार अप्रकट रहने वाले इस शास्त्रप्रसिद्ध कार्य-कारण रूप जगत् को जो साक्षी रूप से देखते रहते हैं और उनसे लिप्त नहीं होते, वे चक्षु आदि प्रकाशकों के भी परमप्रकाशक प्रभु मेरी रक्षा करें।'

कहते हैं कि गजराज के द्वारा इस प्रकार मन-ही-मन की गई स्तुति को सुनकर, अंतर्यामी, सर्वव्यापी निर्गुण, निराकार ब्रह्म सगुण, साकार रूप में, सुदर्शन चक्रधारी श्रीहरि भगवान विष्णु वहाँ प्रकट हुए, जहाँ वह गज था। सरोवर के भीतर महाबली ग्राह के द्वारा पकड़े जाने पर दुःखी हुए उस हाथी ने आकाश में गरुड़ की पीठ पर सवार, चक्र उठाए हुए भगवान श्रीहरि को देखकर, अपनी सूँड़ को, जिसमें उसने पूजा के लिए कमल का एक पुष्प ले रखा था, ऊपर उठाया और सर्वपूज्य भगवान नारायण को प्रणाम किया।

भगवान श्रीहरि गरुड़ को छोड़कर नीचे झील पर उतर आए और ग्राह के मुख को अपने सुदर्शन चक्र से चीरकर गज को मुक्त कराया। शरणागतवत्सल होने के कारण ही तो भगवान द्रौपदी की लाज बचाने को दौड़े आए थे। जब भरी सभा में द्रौपदी का चीरहरण हो रहा था तो उसके पाँचों महाबली पति भी उसकी लाज नहीं बचा पाए थे। उस सभा में भीष्मपितामह, गुरु द्रोण, कृपाचार्य जैसे बलशाली महापुरुष भी थे, पर कोई भी उसकी लाज बचाने नहीं आए।

द्रौपदी स्वयं अपनी लाज बचाने को प्रयास करती रही। दुर्योधन के कहने पर दुःशासन, द्रौपदी को निर्वस्त्र करने को उसकी साड़ी खींचता रहा और द्रौपदी एक हाथ से अपना वस्त्र पकड़ती हुई दूसरे हाथ को उठाकर भगवान को पुकारने लगी। उस समय भगवान श्रीकृष्ण बैठे भोजन कर रहे थे। रुक्मिणी भी पास ही बैठी थीं। भगवान तुरंत उठे और फिर बैठ गए। तब रुक्मिणी ने पूछा—"आप अभी कहीं जाने को उठ खड़े हुए थे, पर फिर बैठ क्यों गए?"

तब भगवान ने कहा—"मुझे कोई पुकार रहा है, पर अभी पूरे मन से नहीं पुकार रहा है, इसलिए मैं उठकर जाने को तैयार तो हुआ, पर पुनः बैठ गया। अभी द्रौपदी के साथ अन्याय हो रहा है, पर अभी उसने अपना एक हाथ ही मुझे बुलाने को ऊपर उठाया है। वह अभी दूसरे हाथ से स्वयं ही अपनी लाज बचाने का प्रयास कर रही है।" इतना कहते ही भगवान फिर उठ खड़े हुए और बोले—

"रुक्मिणी! अब द्रौपदी अपने दोनों हाथ उठाकर मुझे पुकार रही है। वह पूरी तरह शरणागत हो गई है। इसलिए मुझे वहाँ तुरंत ही जाना होगा।" तभी भगवान ने फिर वहाँ अदृश्य रूप में उपस्थित होकर द्रौपदी का चीर बढ़ाया और अंततः दुःशासन को हार माननी पड़ी। इस प्रकार भगवान ने शरणागत द्रौपदी की लाज बचाई।

इस प्रकार हम देखते हैं कि भगवान शरणागत की रक्षा अवश्य करते हैं। वे शरणागत की कभी उपेक्षा नहीं करते। शरणागत हुआ साधक दोषी हो अथवा निर्दोष, पापी हो अथवा पुण्यात्मा, दुराचारी हो अथवा सदाचारी, वह अपने शरणागतवत्सल भगवान के लिए सर्वदा स्वीकार्य है। तात्पर्य यह है कि भगवान की शरण में आए हुए जीव का कल्याण सुनिश्चित है।

यदि प्रभु ने अपना लिया तो अच्छा ही है और यदि स्वीकार नहीं किया तो भी अच्छा ही है। क्यों? क्योंकि यदि भगवान ने स्वीकार कर लिया तब तो कल्याण है और यदि न अपनाया तो भी वह शरणागत जीव, शिष्य, साधक अपने सर्वदुष्कृत्य, सर्वदोष—अपने शरण्य, अपने भगवान को देकर स्वयं निष्पाप हो जाता है। शरणागत का दोष, भगवान का हो जाता है और अंततः शरणागतवत्सल भगवान उसे स्वीकार कर ही लेते हैं, उसे अपना ही लेते हैं।

शरणागति क्या है? शरण में आने की क्रिया या भाव ही शरणागति है। शरणागति शरण में जाने के कार्य या स्थिति को कहते हैं। किसी की शरण में आए हुए होने की अवस्था ही शरणागति है। शरणागति का अर्थ सिर झुकाना नहीं है। शरणागति तो मन का समर्पण है। शरण्य के प्रति शरणागत का पूर्णरूपेण समर्पण ही शरणागति है। जब व्यक्ति यह मान लेता है कि उसके सामर्थ्य की सीमा है, वह ज्ञान, कर्म, भक्ति से हीन है—प्रभु सर्वसमर्थ हैं, सर्वशक्तिशाली हैं, सर्वज्ञ हैं, इसलिए भगवान के अलावा कोई अन्य उपाय उसका उद्धार, कल्याण व रक्षा करने में समर्थ नहीं है।

मन की इस अवस्था को ही शरणागति कहते हैं। अन्य उपायों का आसरा छोड़कर सिर्फ और सिर्फ भगवान को ही उपाय मान लेना या बना लेना ही शरणागति है। शरणागति भगवान के ऊपर आश्रित होना है। अपने मन, बुद्धि व आत्मा को परमात्मा को सौंप देना ही शरणागति है। शरणागति का अर्थ है शरण में आया हुआ। शरणागत को प्रपत्ति भी कहते हैं, 'प्रपत्ति' दो मूल धातु से बना है—'प्र' और 'पद्'। 'प्र' माने ऊँचा और 'पद्' यानी कदम अर्थात सर्वोच्च की ओर कदम बढ़ाना ही प्रपत्ति है।

सर्वोच्च वे ही हैं, जो सर्वसमर्थ हैं; सर्वशक्तिशाली हैं; सर्वज्ञ हैं; सर्वव्यापी हैं और वे भगवान के अलावा दूसरे कोई हो ही नहीं सकते। अस्तु भगवान के अलावा कोई दूसरा शरण्य हो ही नहीं सकता। शरणागति, संकट-निवारण व भगवत्प्राप्ति का बड़ा ही प्रभावशाली साधन है। शरणागति भी भक्ति ही है, पर शरणागति और भक्ति में अंतर यह है कि भक्ति भगवान को पाने का उपाय है और शरणागति में स्वयं भगवान ही उपाय हैं।

एक शरणागत कर्म, ज्ञान, भक्ति सबका अनुशीलन करता है, पर उपाय के तौर पर नहीं; बल्कि सिर्फ भगवान के परमोल्लास के लिए; भगवान की प्रसन्नता के लिए। शरणागत योग के साधक के लिए स्वयं भगवान ही उपाय हैं, अन्य कोई नहीं, कुछ भी नहीं। इसलिए तो भगवान अर्जुन को कह रहे हैं कि तुम अन्य धर्मों अर्थात अन्य उपायों को छोड़कर सिर्फ मेरी शरण में आ जाओ और जो भगवान की शरण में आ गया; भला वह ज्ञान, कर्म और भक्ति से रहित कैसे हो सकता है?

वह स्वयं भगवान में होता है और भगवान उसमें होते हैं। उसमें संपूर्ण ज्ञान, कर्म और भक्ति स्वयं ही उमड़ने लगते हैं, उमगने लगते हैं। शरणागत को किसी प्रकार की चिंता नहीं रहती; क्योंकि वह अपनी चिंता सहित स्वयं को ही भगवान को सौंप देता है। इसलिए वह निर्भय हो जाता है, निर्भीक हो जाता है, अभय हो जाता है। जैसे माता अपने छोटे बच्चे की हर पल देख-भाल करती है, रक्षा करती है और बालक स्वयं अपनी कुछ भी चिंता नहीं करता, वैसे ही शरणागत की चिंता, रक्षा सदैव स्वयं भगवान करते हैं।

एक बार सच्चे मन से पूर्ण शरणागत होने के बाद आगे का मार्ग अत्यंत सुगम हो जाता है। जिस प्रकार बिल्ली का बच्चा स्वयं को अपनी माता को सौंपकर निर्भय हो जाता है, वैसे ही शरणागत साधक स्वयं को पूर्णरूपेण भगवान को सौंपकर निर्भय और निर्भार हो जाता है।

बिल्ली का बच्चा अपनी कुछ भी चिंता नहीं करता। उसकी माता ही उसे जहाँ चाहती है, मुख में दबाकर ले जाती है। बच्चा कुछ भी परवाह नहीं करता कि मैं कहाँ जा रहा हूँ, मेरा क्या होगा, मेरी माता मुझे कहाँ और क्यों लिए जा रही है?

उसी प्रकार शरणागत भी अपने सर्वकर्त्तव्यों की आशा को त्यागकर भगवान को ही अपना उपाय समझता है। वह स्वयं को पूरी तरह भगवान को सौंप चुका होता है। वह भगवान को नहीं, भगवान ही उसे पकड़े हुए होते हैं। भगवान की शरण में आया हुआ शरणागत तो बस, यही कहता है—

न धर्मनिष्ठो, न च आत्मवेदी,
न भक्तिमाम त्वात चरणारविन्दे।
अकिंचनो अनन्यगति शरण्यं,
त्वत् पादमूलं शरणम् प्रपद्ये॥

—स्तोत्र रत्न-22

अर्थात हे प्रभो! मैं न तो धर्म जानता हूँ, न कर्मयोग जानता हूँ और न ही आत्मतत्त्व (ज्ञानयोग) का ज्ञाता हूँ। मैं न तो आपके चरणकमलों की भक्ति में संपन्न हूँ और न ही किसी अन्य साधन प्राप्त करने में ही समर्थ हूँ। असह्य अवस्था में अन्य कोई गति न होने के कारण आपके चरणतल में शरणागति करता हूँ। शरणागति परम सुलभ है, सर्वसुलभ है।

इसलिए अर्जुन को गीता में उपदेश देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि मुझे पाने के तीन मार्ग हैं—कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग, पर कोई अगर इन तीन मार्गों पर भी न चल सके तो मुझे सबसे आसान मार्ग से भी पा सकता है और वह मार्ग है—शरणागति। जो भी मेरी शरण में आ जाएगा उसका उद्धार, उसका कल्याण, उसका भवसागर से पार होना सुनिश्चित है। फिर मेरी शरण में आने वाला व्यक्ति कोई भी क्यों न हो, उसका कल्याण सुनिश्चित है। कुछ ऐसा ही भगवान राम रामायण में उद्घोष करते हुए कहते हैं कि

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणः स्वयम्॥

अर्थात हे वानरश्रेष्ठ सुग्रीव! वह व्यक्ति विभीषण हो अथवा स्वयं रावण भी हो, तो भी उसको ले आओ, मैं उसे अभी अभयदान दे दूँगा।

गीता (9.32-34) में भी भगवान यह उद्घोष करते हैं कि हे अर्जुन! स्त्री, वैश्य, शूद्र तथा पापयोनि—चांडालादि जो कोई भी हों, वे भी मेरी शरण में होकर परमगति को ही प्राप्त होते हैं। फिर इसमें कहना ही क्या, ज़ो पुण्यशील ब्राह्मण तथा

राजर्षि भक्तजन मेरी शरण होकर परम गति को प्राप्त होते हैं।

इसलिए तू सुखरहित और क्षणभंगुर इस मनुष्य शरीर को प्राप्त होकर निरंतर मेरा ही भजन कर। इस प्रकार मुझमें मन और आत्मा को नियुक्त करके, मेरे पारायण होकर, शरणागत होकर तू मुझको ही प्राप्त होगा।

सचमुच भगवान की इच्छाओं में अपनी इच्छाओं को मिला देना और भगवान के भावों में अपने सारे भावों का भुला देना ही सच्ची शरणागति है। मन, वाणी और शरीर से स्वयं को भगवान को सौंप देना ही शरणागति है। सच्चे मन से शरणागत हो जाने पर कठिन-से-कठिन, प्रतिकूल-से-प्रतिकूल परिस्थितियाँ भी शरणागत शिष्य, साधक के अनुकूल हो जाती हैं।

जब राणा जी ने एक भयंकर विषधर काले नाग को फूलों की पिटारी में रखकर उसे शालग्राम कहकर मीरा के पास भेजा तो कृष्ण-दीवानी मीरा ने पिटारी को प्यार से खोलकर देखा और वह विषधर नाग भी प्रभुकृपा से शालग्राम बन गया। उसी प्रकार प्रह्लाद भी प्रभुकृपा से हँसते-हँसते सभी चुनौतियों, कठिनाइयों के पहाड़ों को पार करता गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शरणागत जीव हर स्थिति-परिस्थिति में भगवान की दया का दर्शन करता है, उनकी कृपा पाता है। वह भौतिक जीवन की कठिनाइयों, चुनौतियों को पार कर हर पल आनंद में जीता है। वह सब प्रकार से तृप्त हो जाता है और भगवान का होकर रह जाता है।

श्री सनातन गोस्वामी जी ने अपने ग्रंथ हरिभक्ति विलास (11.676) में शरणागति के लक्षण कुछ इस तरह से बताए हैं। प्रथम है—अपने शरण्य अर्थात हम जिनकी शरण में हैं, उनके अनुकूल सोचना और करना। अपने हर कर्त्तव्य कर्म को भगवान का ही काम समझकर करना। अपने हर कर्म को आसक्तिरहित होकर, कर्त्तापन की भावना से रहित होकर करना एवं अपने हर कर्म को भगवान को अर्पित करते रहना।

दूसरा है—प्रतिकूल वर्जनम् अर्थात जो भी धर्म एवं भक्ति के अनुकूल न हो, वैसे कर्मों का पूर्णरूप से त्याग करना।

तीसरा है—हर समय यह विश्वास रहे कि सर्वव्यापी, सर्वशक्तिशाली, सर्वज्ञ भगवान मेरी रक्षा करेंगे—इस भाव से सर्वत्र सर्वव्यापी भगवान की उपस्थिति का अहर्निश आभास करना।

चौथा है—भगवान के प्रति हर समय हृदय से आभार प्रकट होता रहे कि अभी तक जो कुछ भी अच्छा हुआ है, जो कुछ भी साधना बन पड़ी है, वह केवल और केवल भगवान की कृपा से ही हुई है और आगे भी होगी।

पाँचवाँ है—यह मानना कि जीवन में जो भी मिला है, वह भगवान का दिया हुआ है और अपना कुछ भी न मानना।

छठा है—शरणागति का भी अभिमान न करना।

इस तरह शरणागति अन्य सभी योगमार्ग के साधकों के लिए भी बहुत उपयोगी, उत्तम, अनुकरणीय व लाभप्रद है। किसी भी मार्ग का साधक इसे अपनाकर भगवान की कृपा का पात्र हो सकता है और साधना में शीघ्र सफलता प्राप्त कर सकता है।

आज के तनाव एवं चिंता से भरे हुए जीवन में यह शरणागति का भाव एक महाऔषधि के समान है, अमृत रसायन है; जो सभी प्रकार की चिंताओं, तनावों से मुक्त कर हमें भगवान के कृपाप्रसाद से तृप्त करने में समर्थ है और सर्वसुलभ भी। ❑

अतिचिंतन पर कैसे पाएँ विजय

अतिचिंतन या ओवरथिंकिंग मन की नकारात्मक दिशा में कल्पना करने व सोचने का अतिवादी स्वरूप है, जिसके चलते हम किन्हीं परिस्थितियों की प्रतिक्रियास्वरूप सीमा से अधिक सोचते हैं या भूत और भविष्य के बारे में सोचकर परेशान हो जाते हैं। कोई चीज बुरी लग जाती है, तो उसके बारे में बारंबार सोचने लग जाते हैं।

यह जहाँ व्यक्ति की कार्यक्षमता को प्रभावित करती है तो वहीं बढ़ने पर तन-मन के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है और क्रमश: जीवन की सुख-शांति के लिए एक खतरा बन जाती है। इसके दुष्प्रभावों को देखते हुए इसके कारण तथा निवारण पर विचार अभीष्ट हो जाता है।

यह कोई रोग नहीं, बल्कि एक नकारात्मक आदत है, जो व्यक्ति के शारीरिक और भावनात्मक संतुलन को बिगाड़कर एक सामान्य व स्वस्थ जीवन को दुष्कर बना देती है। इसको यदि सँभाला नहीं गया तो यह उद्विग्नता, अवसाद और पैनिक अटैक जैसी मानसिक अवस्थाओं की ओर ले जाती है, जिनके साथ अनिद्रा, उच्च रक्तचाप तथा तनाव जैसी समस्याएँ जीवन में घर कर सकती हैं।

इसके दुष्परिणाम कुछ इस प्रकार से परिलक्षित हो सकते हैं—निर्णय लेने में कठिनाई होना, क्रोध व तनाव की अवस्था में रहना, अकेलेपन का भाव तथा दूसरों के दृष्टिकोण को न समझ पाना, बार-बार नकारात्मक विचारों को दोहराना व उनका मन-मस्तिष्क पर हावी हो जाना तथा कार्य में ध्यान केंद्रित करने में कठिनाई होना।

निस्संदेह इस अवस्था के स्थायी होने पर तन-मन पर इसका दुष्प्रभाव पड़ता है तथा व्यक्ति का व्यवहार एवं सामान्य जीवन दुष्कर हो जाता है। प्रभावित व्यक्ति की भूख कम हो जाती है, सही ढंग से नींद नहीं आ पाती। चिंता बढ़ जाती है, घबराहट होती है, उच्च रक्तचाप की समस्या उत्पन्न हो जाती है तथा व्यक्ति तनाव व अवसाद का शिकार हो जाता है।

अतिचिंतन या ओवरथिंकिंग के निवारणार्थ कई उपाय किए जा सकते हैं। जिस चीज या व्यक्ति को लेकर आप अत्यधिक चिंतन कर रहे हों, उसके बारे में विचार करें, समाधान सूत्र ढूँढ़ें और फिर तय रणनीति पर दृढ़ता से अमल करें। इस तरह जो चीज या व्यक्ति एक समस्या का रूप लेकर आपके मन पर हावी हो रहे हैं, उन पर कार्य करना शुरू कर दें। देखेंगे कि आप अतिचिंतन के कुचक्र से बाहर आ रहे हैं।

थोड़ा झाँकें कि जिस चीज या व्यक्ति के बारे में आप अतिचिंतन या ओवरथिंकिंग कर रहे हैं, उसके आपके जीवन में क्या मायने हैं? यदि वह आपके जीवन में किसी तरह की गुणवत्ता में बढ़ोत्तरी नहीं कर रहे; तो उनके बारे में सोचना बंद कर दें और जो कार्य आपके लिए महत्त्वपूर्ण हैं, उन्हीं पर अपना ध्यान केंद्रित करें।

यदि आपसे कोई गलती हो गई है, जिसको लेकर आप दु:खी-परेशान हैं तथा अपराधबोध से ग्रसित हैं, तो उस गलती से मिले सबक को गाँठ बाँधकर आगे बढ़ें। इसके परिमार्जन के भाव के साथ मन को माफ कर दें व आगे से अधिक सजग

एवं सचेष्ट रहें। इसी तरह यदि किसी दूसरे ने आपसे गलत व्यवहार किया है, तो उससे मिले सार-सबक को ग्रहण करते हुए उसे क्षमा कर दें और अपने जीवन के सृजन-अभियान पर आगे बढ़ चलें।

जीवन में अप्रत्याशित हानि, वियोग-विछोह आदि की घटनाएँ व्यक्ति को अंदर से बुरी तरह से हिला देती हैं, रह-रहकर उनके जुड़े प्रसंग याद आते हैं और लोग अतिचिंतन के शिकार होकर तनाव व अवसाद में चले जाते हैं। ऐसे में जीवन की इन घटनाओं को व्यापक परिप्रेक्ष्य में इस तरह से देखें कि नित्य लाखों-करोड़ों लोग इनसे गुजर रहे हैं।

जीवन के तात्त्विक स्वरूप को समझने का प्रयास करें व यथास्थिति को स्वीकार करें। अच्छा स्वाध्याय करें, ज्ञानी लोगों से चर्चा करें, आत्मीय शुभचिंतकों से सत्संग करें। साथ ही अपनी अच्छी आदतों से जुड़े रहें तथा अपनी दिनचर्या में आवश्यक सुधार करें एवं नए मित्र बनाएँ। इतना करने पर आप बहुत कुछ अतिचिंतन से बाहर आने लगेंगे।

कई बार हम छोटी-छोटी चीजों को हृदय से लगा लेते हैं और अतिचिंतन के शिकार हो जाते हैं। ऐसे में यदि ये चीजें महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, तो उनको उपेक्षित करें तथा यदि महत्त्वपूर्ण हैं तो इनका उचित समाधान निकालें, उसे क्रियान्वित करें तथा आगे बढ़ चलें।

अतिचिंतन से बाहर निकलने का एक सरल एवं व्यावहारिक तरीका यह भी है कि उस स्थान से बाहर निकलें। कहीं नई जगह या मनपसंद स्थान पर घूमने निकल जाएँ। इससे अतिचिंतन का क्रम टूटता है, मन का बोझ हलका होता है और साथ ही समस्या के प्रति एक नया दृष्टिकोण विकसित होता है तथा इससे निपटने के प्रभावी सूत्र हाथ में लग जाते हैं।

यदि इस समस्या से बहुत अधिक परेशान हो रहे हों तो अपने आत्मीय परिजनों से मिलें, यदि दूर हैं तो फोन पर बात कर लें। यदि यह भी संभव न हो तो मनोचिकित्सकों की भी सलाह ली जा सकती है।

अतिचिंतन का एक बड़ा कारण हर कार्य को सबसे बढ़िया तरह से करने का भाव भी रहता है। सोचने का यह तरीका व्यक्ति को जीवन की छोटी-छोटी अपूर्णताओं के प्रति असंतोष से भरे रखता है और ऐसे में व्यक्ति नकारात्मक विचारों की चपेट में आ जाता है। अतः ऐसी विचार प्रणाली से बाहर निकलें तथा जीवन के व्यावहारिक पक्ष पर अधिक ध्यान दें।

इस समस्या से बाहर निकलने के लिए प्राणायाम और ध्यान का भी सहारा ले सकते हैं। नित्य कुछ मिनट गहरा श्वास लें, प्राणायाम का अभ्यास करें। साथ ही कुछ मिनट ध्यान के लिए निकालें। इनके साथ नकारात्मक विचारों की शृंखला टूटेगी, मन में सकारात्मक व आशावादी विचार भरेंगे तथा आप विचारों के बारंबार प्रवाह से बाहर निकल पाएँगे।

धर्म एव हतो हन्ति, धर्मो रक्षति रक्षितः।

— वेदव्यास

अर्थात — मारा हुआ धर्म ही हमको मारता है और रक्षा किया हुआ धर्म ही हमारी रक्षा करता है।

इस समस्या के संदर्भ में एक बात का ध्यान रखें कि इसके मूल में यथार्थ का धरातल बहुत उथला रहता है। भय, आशंका, चिंता के मूल में सक्रिय अधिकतर विचार कल्पित व निर्मूल ही निकलते हैं। ऐसे में अतिचिंतन में उलझना किसी भी तरह समझदारी भरा कदम नहीं होता। इस सत्य को समझते हुए, मन के प्रमथन स्वभाव पर अंकुश लगाने का सतत अभ्यास करें, इसे लक्ष्यकेंद्रित रखें और अपने जीवन के आध्यात्मिक लक्ष्य की ओर बढ़ते रहें। ❑

प्रभावशाली लाल रंग

रंगों का अपना महत्त्व है। लाल रंग का महत्त्व कुछ और है। लाल रंग का महत्त्व हमारे पूर्वजों को पता था। इसीलिए इसका अपने समाज में बड़ा प्रभाव रहा है। लाल चूनर से लेकर लाल चूड़ियाँ और शादी का जोड़ा लाल, सिंदूर भी लाल। यहाँ तक कि पूजा-पाठ और शुभकार्य में लाल रंग का ही बोलबाला होता है।

आज विज्ञान बता रहा है कि यह रंग शक्तिशाली संदेश देता है। वैज्ञानिक यह सच ढूँढ़ चुके हैं कि लाल रंग में लिपटी महिला को तिरस्कार मिलने की संभावनाएँ कम लगती हैं; क्योंकि लोग लाल लिबास वाली महिला के साथ खुद को सहज महसूस करते हैं। लाल जोड़ा, लाल चूड़ा, लाल परांदा, लाल बिंदी, लाल महावर यानी सिर से पाँव तक लाल-ही-लाल—नववधू इसीलिए आकर्षण का केंद्र बनती रही है।

लाल रंग को प्रभावशाली माना गया है। लाल आलता, सिंदूर लाल, लाल चूड़ियाँ, बिंदी लाल—सब महिलाओं का श्रृंगार है। रंगों की श्रेणियों की समझ रखने वाले भी लाल को बहुत आक्रामक रंग की संज्ञा देते हैं। आक्रमण, जुनून और क्रोध के लिए लाल को सांकेतिक माना जाता है। लालच, दीवानगी, काम, सौंदर्य से जुड़ा है यह लाल रंग।

यह सच है कि खूबसूरत लाल रंग का खतरे के निशान के लिए भी इस्तेमाल होता है। चेतावनी देने के लिए प्रयोग किए जाने वाले इस तीव्र लाल रंग पर कोई संदेह नहीं करता। वैज्ञानिक रूप से लाल रंग को रोशनी का रंग माना गया है, रोशनी के साथ मिलकर इसकी वेबलैंथ अर्थात तरंगें मानव नेत्र से सबसे लंबी देखी जाती हैं।

इसको सबसे गहरा रंग होने का गौरव भी प्राप्त है। हमारे शरीर में बह रहे खून का रंग भी लाल है। शायद इसीलिए इसको प्यार और खुशी का रंग माना गया है। गुलाब, आग और ढलते हुए सूरज का लाल रंग जीवन के हिस्से हैं। क्रांतिकारी आंदोलनों को भी लाल रंग से ही संबोधित किया जाता रहा है। लेजर टेक्नोलॉजी में लाल रंग की मुख्य भूमिका होती है। लाल प्राथमिक रंग है, इसकी तमाम श्रेणियाँ हैं।

आमतौर पर देखा जाता है कि नन्हे बच्चे जिनको रंगों का ज्ञान कराया जाता है, वे सबसे पहले लाल को ही पहचानते हैं। लोभ से लाल का जुड़ाव बताता है कि लोभी तो प्रेमी भी होता है और उत्तेजना से भरा भी होता है वह। चीनी लाल रंग को अग्नि मानते हैं, यह उनके लिए सकारात्मक और ऊर्जा का रंग है। सम्मान, सफलता, किस्मत, उत्पादकता, खुशी और गरमी के लिए वे लाल रंग का प्रयोग करते हैं।

उनकी संस्कृति भी लाल रंग को दुलहन का रंग मानती है। चीनी नववर्ष में लाल रंग की पोटली में ही उपहार दिए जाने का रिवाज है। जापान में यह नायकत्व का रंग है। मध्य अफ्रीका में लड़ाके उत्साह में आकर लाल रंग रगड़ लेते हैं। वहाँ यह जीवन और स्वास्थ्य का प्रतीक है।

आश्चर्यजनक तो यह है कि अफ्रीका के कुछ इलाके लाल को दु:ख का प्रतीक मानते हैं। वे अकेला समाज हैं, जो इसे मृत्यु से जोड़ते हैं। यही

कारण है कि रेडक्रास को इन इलाकों में अपने चिह्न का रंग बदलकर हरा या सफेद करना पड़ा। राजनीतिज्ञों को लाल रंग कम आकर्षित नहीं करता।

झंडों से लेकर परिधानों तक में लाल रंग का खूब प्रयोग होता रहा है। क्रांतियाँ तो लाल हुई हैं। अपने यहाँ लाल किताब भी मौजूद है, जिसको गोपनीय और अति उच्चस्तरीय ज्ञान का भंडार माना जाता रहा है। जानवरों में लाल रंग प्रभुत्व का प्रदर्शन करता है।

व्यावहारिक, सामाजिक मनोविज्ञान द्वारा कराए गए ऐसे ही अध्ययन के नतीजे इसकी काफी हद तक पुष्टि भी करते हैं। चटख रंगों का प्रयोग करने वाले खुशमिजाज और खुले मन वाले होते हैं। यहाँ तक कि लाल रंग को प्राथमिकता देने वालों को अति उत्साही, ऊर्जावान और तीव्रगति से काम करने वाला बताया जाता है। व्यावहारिक दृष्टिकोण भी इस सोच से मेल खाता है।

देखा गया है कि लाल रंग के फल सेब, चेरी, स्ट्रॉबेरी और टमाटर लोगों को पसंद होते हैं। मंगल ग्रह का रंग लाल है, इसलिए इसे 'लाल ग्रह' भी कहते हैं। ज्युपिटर की सतह भी लाल रंग की बताई जाती है।

ज्योतिष में विश्वास करने वाले लाल रंग को मंगल ग्रह का प्रतीक मानते हैं। कमजोर या उग्र मंगल वालों के लिए लाल रंग से परहेज या लाल रंग की चीजों के दान की परंपरा है। बजरंगबली के उपासक लाल जैसे रंगों का प्रयोग श्रद्धा से करते हैं। अपने यहाँ पहलवानी करने वाले लाल लँगोट लगाते हैं और पीपल देव को प्रसन्न करने के लिए टोने के रूप में लाल रंग के लँगोट वृक्ष पर मंगलवार या शनिवार को बाँधते भी हैं।

सनातनी हिंदू परिवारों में महिलाएँ सुहाग चिह्न के रूप में लाल रंग की बिंदी, सिंदूर, आलता लगाती हैं। विवाह के रीति-रिवाजों में लाल रंग की चीजों का विशेष महत्त्व है। हालाँकि इतने के बावजूद अपने समाज में जब लोगों में अक्षर ज्ञान बहुत कम था, तब लाल रंग की स्याही से लिखे पत्र को मातमी माना जाता था। लोग उसे देखते ही समझ लेते थे, कहीं किसी का देहांत हुआ है।

यह सांकेतिक भाषा थी। रंग की भाषा। लाल रंग को दीवानगी, प्रेम, क्रोध और अपराधबोध का रंग माना गया है। वेश्यावृत्ति से भी लाल रंग का संबंध माना गया है, इसीलिए सारी दुनिया में उनका इलाका 'लाल-बत्ती' क्षेत्र कहलाता है। रँगे हाथों पकड़े जाने को अँगरेजी में 'रेड हैंडेड' ही कहते हैं।

यह तो वास्तविकता है कि लाल रंग की कारें सड़कों पर ज्यादा दुर्घटनाग्रस्त होती हैं; जबकि लाल गुलाबी रंग को सारी दुनिया प्रेम का प्रतीक मानती है। प्रेमीयुगल के करीब आने में यह सकारात्मक भूमिका निभाने वाला माना जाता है। इसे हिम्मत और त्याग का रंग भी माना गया है। विदेशी शहीदों की दावत में लाल रंग के पेय का पान पवित्र हफ्ते में करते हैं।

रोमन परंपरा लाल रंग को परमात्मा के युद्ध से जोड़ती है। ब्रितानी सैनिकों की पोशाक में लाल रंग का कोट शामिल है। खतरे के चिह्नों व चेतावनी के प्रतीकों के लिए लाल रंग का ही इस्तेमाल होता है। इस तरह लाल रंग का अपना एक विशेष महत्त्व है। ❑

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः। —*ऋग्वेद 1/164/39*

अर्थात वेदमंत्रों में दैवी शक्तियाँ विद्यमान हैं। इनमें वह वैज्ञानिक प्रक्रिया सन्निहित है, जिसके उच्चारण मात्र से मनुष्य के शरीर और मन में विशेष प्रकार के स्पंदन होते हैं और उनसे अभीष्ट लाभ प्राप्त होने का पथ प्रशस्त होने लगता है।

भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी

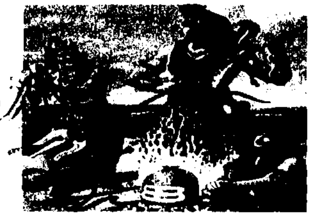

कहते हैं कि व्यक्ति का प्रारब्ध (भाग्य) बड़ा ही प्रबल और बलवान होता है। व्यक्ति के भाग्य में अच्छा-बुरा, शुभ-अशुभ जो कुछ भी लिखा है, वह होकर रहता है। उसे टाला नहीं जा सकता। उसे मिटाया नहीं जा सकता। व्यक्ति को प्रारब्ध भोगना ही पड़ता है, पर प्रारब्ध है क्या? दरअसल अपने किए कर्मों का फल ही प्रारब्ध (भाग्य) कहलाता है। संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध- ये तीन प्रकार के कर्म बताए गए हैं।

जन्म-जन्मांतरों के अच्छे-बुरे कर्म जो संचित होते रहते हैं, इकट्ठा होते रहते हैं, उन्हें ही संचित कर्म कहते हैं। संचित कर्मों का वह भाग जो परिपक्व होकर अब व्यक्ति के जीवन में सुख-दु:ख, शुभ-अशुभ भोग के रूप में प्रकट होने को प्रस्तुत है, उसे ही प्रारब्ध या भाग्य कहते हैं। हमसे नित्य नवीन अच्छे-बुरे, सत-असत, शुभ-अशुभ जो भी कर्म होते हैं, उन्हें ही क्रियमाण कर्म कहते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या प्रारब्ध (भाग्य) को बदला नहीं जा सकता? क्या मनुष्य भी पशु-पक्षी या अन्य जीवों की तरह प्रारब्ध भोगने मात्र के लिए विवश है अथवा वह अपने बुरे प्रारब्ध को मिटाकर अपने लिए नए सुखद प्रारब्ध की रचना कर सकता है? क्या जीवन में होने वाले अनिष्ट या अशुभ को टाला नहीं जा सकता? क्या प्रारब्ध को मिटाने या बदल देने का कोई उपाय नहीं?

ऐसे अनेक प्रश्न मानव मन में सदियों से गूँजते रहे हैं। ऐसी कई पौराणिक कथाएँ हैं, जिनके माध्यम से हमें सहज ही इन प्रश्नों का सही समाधान प्राप्त होता है।

एक ऐसी ही कथा महात्मा मृकण्डु और उनके पुत्र मार्कण्डेय से संबंधित है। कथा के अनुसार देवात्मा हिमालय के उत्तरी भाग में हरे-भरे पेड़ों, रंग-बिरंगे सुगंधित पुष्पों व पर्वतों से घिरे अपने आश्रम में महात्मा मृकण्डु अपनी धर्मपत्नी मरूद्वाति के साथ रहते थे। हिमालय के दिव्य, पावन व स्वर्गीय वातावरण में रहकर वे दोनों बड़ी श्रद्धा और भक्ति से भगवान शिव की आराधना किया करते थे।

महात्मा मृकण्डु ब्राह्ममुहूर्त में उठकर पास बहते हुए स्वच्छ झरने में स्नान करते और भगवान शिव की पूजा-उपासना में लग जाते। वे अपने आस-पास खिले हुए सुगंधित पुष्पों को चुनकर लाते और मरूद्वाति उन सुगंधित पुष्पों की माला बनातीं। वे स्वच्छ चमकते पात्र में आश्रम की गाय का दूध दुहते। फिर पति-पत्नी दोनों भगवान शिव की पूजा करने बैठ जाते। वे दोनों भगवान शिव का पवित्र जल व दुग्ध से अभिषेक करते। उन्हें चंदन का सुगंधित लेप लगाते, सुगंधित पुष्प अर्पित करते, बिल्वपत्र चढ़ाते, फिर धूप, दीप, नैवेद्य आदि अर्पित कर भगवान शिव की स्तुति व आरती करते।

इस प्रकार भगवान शिव की आराधना करते हुए बहुत समय बीत गया। मृकण्डु और मरूद्वाति की आयु बढ़ने लगी और अब तक कोई संतान प्राप्त न होने के कारण वे दोनों चिंतित भी रहा

करते। वे सोचते कि हमारे कोई पुत्र नहीं है, फिर बुढ़ापे में हमारी देख-भाल कौन करेगा? हमारे बाद आश्रम में भगवान शिव की पूजा-आराधना कौन करेगा? आश्रम की रक्षा कौन करेगा?

उनकी चिंता इस बात को लेकर भी थी कि हमारे पुत्र नहीं होने पर देवताओं की पूजा भला कौन करेगा? उन दिनों जमीन जोतकर अन्न उपजाने को पृथ्वी की पूजा करना कहा जाता था। आकाश, वायु, अग्नि और जल—प्रकृति के इन वरदानों का उनके नियमों के अनुसार प्रयोग करना ही उन दिनों इनकी पूजा करना समझा जाता था और सारे विश्व के कल्याण की कामना करना ही वास्तविक शिव-उपासना समझी जाती थी।

सच्चे मन से विश्व-कल्याण की कामना करना और संसार की सेवा करना यही शिव-पूजा का प्रमुख ध्येय हुआ करता था। भगवान शिव का ध्यान करते ही लोगों का ध्यान उनकी कल्याणकारी प्रवृत्ति पर केंद्रित हो जाता है। इसलिए पति-पत्नी दोनों किसी ऐसे पुत्ररत्न की प्राप्ति की चिंता में थे जो उनके बाद सही मायने में शिव-पूजा करते रहने की उनकी विरासत को सँभाल सके और आगे बढ़ा सके। उनकी पुत्र-प्राप्ति की चिंता भी किसी व्यक्तिगत मोह के कारण नहीं, बल्कि विश्व-कल्याण की उनकी महान भावना के कारण थी।

अंत में इसी भावदशा में दोनों पति-पत्नी एक दिन भगवान शिव का ध्यान करते हुए आश्रम के निकट बैठ गए और बोले—"भोलेनाथ! अब हम यहाँ से तब तक नहीं उठेंगे, जब तक आप हमारी इच्छा पूरी नहीं कर देते।" इस प्रकार बहुत समय बीत गया, पर उनका दृढ़संकल्प नहीं टूटा। आखिरकार महात्मा मृकण्डु और उनकी पत्नी की तप-साधना से आशुतोष भगवान भोलेनाथ प्रसन्न हुए।

भक्त की जिद के समक्ष भगवान आशुतोष विवश हुए और एक दिन ब्राह्ममुहूर्त में जब पति-पत्नी ध्यानमग्न बैठे थे, तभी अचानक भगवान शिव प्रकट हुए। भस्मांकित मुस्कराता चेहरा, भाल पर चमकता चंद्रमा, नेत्रों से झरता ज्योति-कण, प्रकाशवान नीला कंठ और हाथ में त्रिशूल, भगवान के इस दिव्य स्वरूप को देखकर दोनों पति-पत्नी अभिभूत हो गए, आनंदातिरेक में उनके रोम-रोम पुलकित हो उठे, आँखों से आनंद के भाव अश्रु बनकर बहने लगे और वे दोनों निःशब्द हो भगवान शिव को अपलक देखते रहे।

अधरों पर मधुर मुस्कान लिए भगवान बोले—"माँगो वत्स! क्या माँगते हो।" "भगवान हमें पुत्र की प्राप्ति हो"—वे बोले। भगवान शिव मुस्कराए और बोले—"कैसा पुत्र चाहिए वत्स! गुणवान, परंतु कम आयु वाला अथवा गुणहीन और बहुत दिन जीने वाला!" तब मरूद्वाति ने अपने पति महात्मा मृकण्डु की ओर देखा और फिर कहा—"भगवान! हमें गुणवान पुत्र चाहिए, चाहे वह कम दिनों तक ही जीवित रहे।" 'एवमस्तु' कहकर भगवान शिव मेघमंडल में बिजली के समान अंतर्धान हो गए।

समय आने पर मृकण्डु दंपती के यहाँ पुत्र उत्पन्न हुआ। नाम रखा गया मार्कण्डेय। यह नाम हो भी क्यों न? मृकण्डु का पुत्र मार्कण्डेय ही तो कहलाएगा। मार्कण्डेय पाँच वर्ष के हो चले थे और उनके पिता ने उन्हें शिक्षा-संस्कार देना शुरू किया—"पुत्र मार्कण्डेय! तुम हमेशा सच बोलना, प्रकृति के जीवों से मेल-मिलाप से रहना, उन्हें बिना कारण कष्ट मत पहुँचाना। कर्त्तव्य-पथ से कभी न हटना। भगवान शिव की कृपा से हमने तुम्हें पाया

है। उनके कहे अनुसार तुम्हारी आयु अधिक नहीं होगी, परंतु यदि तुम परिश्रम करोगे तो सब गुण तुममें वास करेंगे।''

माता मरूद्वाति भी नित्य प्रति पुत्र को आश्रम-सेवा का कर्म सिखातीं, पेड़-पौधों की देख-भाल, पृथ्वी से अन्न का उत्पादन, भोजन तैयार करने की कला, अपना काम स्वयं करने की आदत, आश्रम की सफाई व सुरक्षा, दूसरों की सेवा-सहायता और सबके कल्याण की भावना के साथ भगवान शिव की पूजा-आराधना अपने पुत्र को सदैव सिखाया करतीं।

मार्कण्डेय भी अपने माता-पिता के कहे अनुसार ही जीवन जीने लगे। अब मार्कण्डेय 12 वर्ष के हो चले थे, उनकी तीव्र इच्छा थी कि वे ऋषि अगस्त्य से विद्या प्राप्त करें। उन दिनों दक्षिण में ऋषि अगस्त्य का बहुत नाम था।

दक्षिण पहुँचकर मार्कण्डेय ने सबसे पहले एक सुंदर नीले रंग का पत्थर ढूँढ़ा और बड़े प्रेम-परिश्रम से उसे चिकना बनाकर उसे शिवलिंग के रूप में तैयार कर उसे स्थापित किया। फिर वे प्रतिदिन नियमपूर्वक भगवान शिव की पूजा-उपासना करने लगे। शिव-मंदिर की सफाई, भगवान शिव को अर्पित करने को दुग्ध, बिल्वपत्र लाना, मंदार के पुष्प की माला बनाना, फिर स्नान कर भगवान शिव को अर्पित कर देना। यह उनका नित्यकर्म बन गया। वे अगस्त्य ऋषि की पाठशाला में भी जाते और वहाँ भी मन लगाकर अपना काम करते। आश्रम में दूर-दूर से आए हुए विद्यार्थियों के बीच रहना उन्हें बहुत भाता।

एक बार सप्तर्षि वहाँ पधारे। मार्कण्डेय ने बड़ी श्रद्धा और भक्ति से सप्तर्षियों की सेवा की। मरीचि, अत्रि, अंगिरस, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ—ये सातों ऋषि उनकी सेवा से बड़े प्रसन्न हुए। यद्यपि उन सप्तर्षियों का स्थायी निवास आकाश के उत्तरी भाग में मानसरोवर के ठीक ऊपर ध्रुवतारे के पास है, पर वे कुछ दिनों तक दक्षिण में ही रहे।

अंत में जब वे सप्तर्षि वहाँ से जाने लगे तब एक-एक कर उन सातों ऋषियों ने मार्कण्डेय को आशीर्वाद दिया। जब सबसे अंत में गुरु वसिष्ठ के मुँह से 'पुत्र मार्कण्डेय दीर्घायु हो'—ये शब्द निकले तो अचानक ऋषि वसिष्ठ की दृष्टि मार्कण्डेय के ललाट पर पड़ गई। मार्कण्डेय के ललाट की स्पष्ट रेखाएँ उनकी अल्पायु को दरसा रही थीं। ऋषि वसिष्ठ ने तुरंत भाप लिया कि इस बालक की तो मृत्यु निकट है और मेरा आशीर्वाद व्यर्थ जाएगा। यह देखकर सातों ऋषि बड़े सोच में पड़ गए। वे मार्कण्डेय की सेवाओं से इतने प्रसन्न थे कि किसी प्रकार भी उनकी मृत्यु नहीं चाहते थे।

वे सभी सप्तर्षि तुरंत ब्रह्मा जी के पास गए और उनसे बालक मार्कण्डेय को दीर्घायु बनाने की प्रार्थना करने लगे। सप्तर्षियों की बातें सुनकर ब्रह्मा जी मुस्कराए और बोले—''आप लोग चिंता न करें। यह बालक तो भगवान शिव का उपासक है। भगवान शिव क्या अपने भक्त को छोड़ देंगे? उनका भक्त कभी कष्ट नहीं उठाता।''

सप्तर्षि आश्वस्त होकर लौटे। इधर दक्षिण में प्रवास करते हुए और अगस्त्य मुनि से शिक्षा ग्रहण करते हुए 4 वर्ष बीत गए थे तथा मार्कण्डेय अब 16 वर्ष के हो चले थे और उनकी जन्मकुंडली के अनुसार उनकी आयु मात्र 16 वर्ष तक की ही थी। मृत्यु के देवता यम मार्कण्डेय के प्राण हरण करने को उनके पास आए, पर मार्कण्डेय तो उस समय अपने आराध्य, अपने इष्टदेव भगवान शिव की पूजा में मग्न थे।

मार्कण्डेय ने यम से थोड़ा ठहर जाने को कहा, ताकि वे भगवान शिव की पूजा पूरी कर सकें। बालक की बात सुनकर यम बहुत जोर से हँसे और बोले—"बालक! मृत्यु कभी भी किसी के लिए ठहरती नहीं। तुम्हारी आयु पूर्ण हो चुकी है। तुम्हें अब मृत्यु को प्राप्त करना ही होगा।" यम की जिद देखकर बालक मार्कण्डेय तुरंत शिवलिंग से लिपट गए। अपनी लंबी बलिष्ठ बाँहों से उन्होंने भगवान शिव को अपनी छाती से लगा लिया। उन्हें ऐसा लगा कि समस्त पृथ्वी का और उनका अपना कल्याण भी उस समय उनके शिवलिंग से लिपटे रहने पर ही निर्भर है।

उन्होंने सोच लिया कि चाहे जो हो जाए, पर वे शिवलिंग को नहीं छोड़ेंगे। उधर यम उनके प्राण लेने को फिर आगे बढ़े और उनके प्राण लेने लगे। फलस्वरूप बालक मार्कण्डेय का गला रुँधने लगा।

वे चिल्लाए—"हे भगवान! हे भोलेनाथ! हे देवों के देव महादेव! हे आशुतोष! आप मेरी रक्षा करें।" अपने भक्त की आकुल पुकार, आकुल प्रार्थना को सर्वज्ञ, सर्वव्यापी भगवान भोलेनाथ भी भला कैसे अनसुनी कर सकते थे। तभी अचानक ऐसा हुआ कि शिवलिंग बालक मार्कण्डेय के हाथ से छूट गया और भगवान शिव प्रकट हो गए।

भगवान शिव के रौद्र रूप को देखकर यम वहाँ से भाग खड़े हुए। तब भगवान भोलेनाथ ने बालक मार्कण्डेय को अपनी गोद में बैठाकर प्यार से उनके सिर पर हाथ फेरा और उन्हें दीर्घायु होने का वरदान दिया। सचमुच भक्ति और प्रेम के बल पर निर्गुण, निराकार, अव्यक्त ब्रह्म भी सगुण, साकार रूप में व्यक्त हो सकते हैं।

बालक मार्कण्डेय ने इसे भगवान के प्रति अपनी प्रगाढ़ भक्ति और प्रेम से चरितार्थ कर दिया था। उस दिन मार्कण्डेय की आयु 16 वर्ष की थी। भगवान शिव की कृपा से उनमें आजीवन 16 वर्ष के नवयुवक के समान कार्य करने की शक्ति आ गई।

वृद्धावस्था में उनकी भक्ति माँ दुर्गा की ओर हुई। दुर्गा उनके इष्टदेव भगवान शिव की ही तो शक्ति थीं। एक दिन उन्होंने भक्ति के आवेश में माँ दुर्गा की स्तुति में सात सौ श्लोक कह डाले। आगे चलकर उनकी यह कृति देवीमाहात्म्य या दुर्गा-सप्तशती के नाम से प्रसिद्ध हुई।

आज सारे विश्व में भक्तगण देवी की पूजा-आराधना में मार्कण्डेय द्वारा रचित वही स्तोत्र गाते हैं और भगवती आद्यशक्ति दुर्गा से अनुदान-वरदान पाते हैं। मार्कण्डेय को अपने इष्ट भगवान शिव और देवी दुर्गा से प्रेम तो था ही, उन्हें अपनी मातृभूमि भारतवर्ष से भी असीम अनुराग था। इसलिए अपने महान ग्रंथ 'मार्कण्डेय पुराण' में उन्होंने अनेकों स्थान पर भारतभूमि का वर्णन किया है। भारतवर्ष की नदियों और पर्वतों की स्तुति गाई है। आगे चलकर मार्कण्डेय—ऋषि मार्कण्डेय के रूप में सुविख्यात हुए।

इस प्रकार इस कथा के माध्यम से हम देखते हैं कि महात्मा मृकण्डु और मरूद्वाति के भाग्य में संतान सुख नहीं लिखा था। मार्कण्डेय की आयु मात्र 16 वर्ष तक की ही थी, पर दृढ़संकल्प कठोर तप-साधना व दृढ़ भगवद्भक्ति के फलस्वरूप असंभव भी संभव हो गया। तपस्या और भक्ति के बल पर महात्मा मृकण्डु व मार्कण्डेय ने अपने प्रारब्ध को भी बदल डाला। सचमुच दृढ़संकल्प, कठोर तपस्या व भगवद्भक्ति के बल पर प्रारब्ध को भी बदला जा सकता है।

मनुष्य पशुवत् प्रारब्ध भोग को भोगने के लिए विवश नहीं है। यदि मनुष्य प्रारब्ध भोगने मात्र के लिए विवश होता तो मनुष्य योनि को भी भोग योनि कहा जाता, कर्म योनि नहीं। कर्म से निस्संदेह भाग्य को बदला जा सकता है। दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदला जा सकता है। तपस्या व शिव-आराधना के बल पर प्रारब्धवश, भाग्यवश घटने वाली किसी अप्रिय घटना को भी टाला जा सकता है। सचमुच प्रचंड तपस्या व अटल शिव-आराधना से प्रारब्ध (भाग्य) भी बदल सकता है। प्रारब्ध भी मिट सकता है। तभी तो मानसकार ने भी श्रीरामचरितमानस में देवर्षि नारद के श्रीमुख से यह कहलवाया है—

कह मुनीस हिमवंत सुनु जो बिधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार॥

तदपि एक मैं कहउँ उपाई।
होइ करै जौं दैउ सहाई॥
जस बरु मैं बरनेउँ तुम्ह पाहीं।
मिलिहि उमहि तस संसय नाहीं॥
संभु सहज समरथ भगवाना।
एहि बिबाहँ सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू।
आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥
जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी।
भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
बर दायक प्रनतारति भंजन।
कृपासिंधु सेवक मन रंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें।
लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥

अर्थात देवर्षि नारद माता पार्वती के माता-पिता के पास पहुँचे और बोले—"हे हिमवान! सुनो, विधाता ने कर्मों के आधार पर किसी के ललाट पर (यानी भाग्य में) जो कुछ लिख दिया है, उसको देवता, दानव, मनुष्य, नाग और मुनि कोई भी नहीं मिटा सकते, पर तो भी मैं एक उपाय बताता हूँ। यदि देव सहायता करें तो वह सिद्ध हो सकता है और भाग्य में लिखा भी बदल सकता है। प्रारब्ध भी मिट सकता है। तुम्हारी पुत्री उमा को वर तो निस्संदेह वैसा ही मिलेगा, जैसा मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया है।

"हे हिमवान! भगवान शिव सहज ही समर्थ हैं, क्योंकि वे भगवान हैं। इसलिए इस विवाह में सब प्रकार कल्याण है। हाँ! महादेव की आराधना बड़ी कठिन है, पर फिर भी तप करने से वे बहुत जल्द संतुष्ट हो जाते हैं, प्रसन्न हो जाते हैं। अस्तु यदि तुम्हारी कन्या तप करे, तो त्रिपुरारि महादेव उसके होनहार (प्रारब्ध) को भी मिटा सकते हैं।

"भगवान शिव वर देने, शरणागतों के दु:खों का नाश करने वाले, कृपा के समुद्र और सेवकों के मन को प्रसन्न करने वाले हैं। भगवान शिव की आराधना किए बिना करोड़ों योग और जप करने पर भी वांछित फल नहीं मिलता। इस प्रकार शिव-आराधना का उपदेश कर देवर्षि नारद वहाँ से विदा हुए।"

अत: यह स्पष्ट है कि तपस्या व भगवद्भजन से हम संचित, क्रियमाण और प्रारब्ध इन तीनों कर्मों को भस्मीभूत कर सकते हैं। हम न सिर्फ अपने भाग्य अथवा प्रारब्ध को बदल सकते हैं, बल्कि हम मोक्ष व भगवत्प्राप्ति भी कर सकते हैं। दुर्भाग्य को सौभाग्य में बदलने, प्रारब्ध को मिटाने व भगवत्कृपा और भगवद्दर्शन के लिए तपस्या, भगवद्आराधना बड़ा ही प्रभावशाली साधन है, साधना है, उपासना है, आराधना है। शिव-आराधना का अपने जीवन में प्रयोग कर हम भी निस्संदेह निहाल हो सकते हैं। ❑

व्यक्तित्व के आधार को पोषित करें

जीवन एक वटवृक्ष की भाँति है, जिसमें यदि पत्ते-तनों को ही सिंचित किया जाता रहा, तो वृक्ष का वैसा विकास नहीं हो पाता, जो इसकी जड़ों में जल व खाद-पानी के सिंचित करने पर होता है। अतः जीवनरूपी वृक्ष के समग्र विकास के लिए इसकी जड़ों को सिंचित व पोषित करते रहना आवश्यक हो जाता है।

इसके लिए अपने जीवन की पूरी जिम्मेदारी स्वयं लेनी पड़ती है। आज हम जो भी हैं, अच्छे या बुरे, सफल या असफल, इसके लिए हम स्वयं जिम्मेदार हैं। हम जिन भी परिस्थितियों में हैं, समाज-परिवार-संसार से हमें जो भी व्यवहार मिल रहा है, इसके लिए भी हम स्वयं ही जिम्मेदार हैं। अपने जीवन की पूरी जिम्मेदारी लेते हुए, हम अपने व्यक्तित्व की जड़ों को सिंचित कर रहे होते हैं, जिसके आधार पर हम अपने व्यक्तित्व को वह स्वरूप दे सकते हैं, जहाँ हम एक सार्थक-सफल जीवन की अनुभूति के साथ स्वयं को धन्य कर सकें।

इसके लिए जीवन का गहनतम स्तर पर विश्लेषण करना अभीष्ट रहता है; जिसमें व्यावहारिक मनोविज्ञान का अपना महत्त्व रहता है, लेकिन चेतना के मर्म तक पहुँचने के लिए अध्यात्म विज्ञान का सहारा लेना पड़ता है।

व्यक्तित्व की संरचना शरीर-इंद्रिय, मन-बुद्धि और चित्त-अहंकार से मिलकर बनती है। इसके पार होता है अतिचेतन अर्थात आध्यात्मिक आयाम। परमपूज्य गुरुदेव के शब्दों में, व्यक्तित्व तीन स्तरों से मिलकर बनता है, चेतन, अचेतन और अतिचेतन। व्यवहार और बुद्धि सचेतन हैं। आदतें अचेतन का हिस्सा हैं तथा उत्कृष्टता अतिचेतनता का प्रतीक है।

मनोविज्ञान जहाँ चेतन और अचेतन हिस्सों को जानने व इनके परिष्कार की बात करता है और अतिचेतन को आंशिक रूप से ही छू पाता है तो वहीं अध्यात्म विज्ञान व्यक्तित्व के तीनों आयामों को लेकर चलता है। एक तरह से अतिचेतन ही इसका आदि एवं अंत होता है। इस कारण व्यक्तित्व के रूपांतरण की जब बात आती है, तो मनोवैज्ञानिक उपचार अपनी समग्रता में आंशिक रूप से ही प्रभावी हो पाते हैं और अंततः आध्यात्मिक उपचारों का ही सहारा लेना पड़ता है।

धर्म-अध्यात्म का पूरा कलेवर इसी के निमित्त बना हुआ है। धर्म अपने वास्तविक रूप में जीवन के आत्यंतिक उत्कर्ष की बात करता है। भारतीय दार्शनिक चिंतन की परंपरा में पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म ही आधारभूत है। अर्थ और काम को यहाँ धर्म के दायरे में आबद्ध किया गया है, तभी ये व्यक्ति को जीवन के परम पुरुषार्थ की ओर ले जाते हैं।

बिना धर्म के आध्यात्मिक उत्कर्ष की कल्पना भी नहीं की जा सकती। धर्म का अभिप्राय यहाँ धारण करने योग्य उन गुणों से है, जिनके आधार पर व्यक्ति सही माने में इनसान बनता है और उसकी जीव से शिव तथा नर से नारायण बनने की आध्यात्मिक यात्रा संपन्न होती है।

इसी पृष्ठभूमि में वह अंतर्दृष्टि विकसित होती है, जिसके बल पर व्यक्ति लौकिक जीवन की जटिल गुत्थियों को भेद पाता है, जिससे वह प्रकृति व माया के गहन आच्छादन के पार सत्य को देख-समझ पाता है।

इसे दिव्य अंतर्दृष्टि या यौगिक अंतर्दृष्टि कह सकते हैं, जिसके द्वारा वह बुद्धिगत भेदों से ऊपर

उठकर तर्क की पहेली को बुझा सके और जीवन के मर्म का बोध कर सके। इसी के आधार पर उसे समझ आता है कि उसकी सत्ता देह-मन तक सीमित नहीं है, ये तो उसके औजार मात्र हैं, वह उनका नियंता व स्वामी है। ये ईश्वरप्रदत्त दिव्य यंत्र हैं, जिनका उपयोग उसे अपने जीवनलक्ष्य को प्राप्त करने के लिए करना है।

आध्यात्मिक दृष्टि के आधार पर ही साधक शास्त्रों में वर्णित षड्‌रिपुओं के स्तर पर अपने व्यक्तित्व की जाँच-पड़ताल कर पाता है कि किस तरह काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर जैसे विकार हमें कदम-कदम पर परास्त करते हुए जीवन को नारकीय बनाने के लिए आतुर रहते हैं और इनको पहचानकर उनके परिष्कार की साधना-विधि को उपयोग में लाता है।

आध्यात्मिक दृष्टि के अभाव में व्यक्ति इन विकारों को ही जीवन का ध्येय बना बैठता है, सांसारिक सुख-भोग में डूबा रहता है, किसी भी प्रकार धनकुबेर बनने के सपने देखता है, अपने संकीर्ण स्वार्थों की पूर्ति व क्षुद्र अहं के पोषण में अधिकांश समय व ऊर्जा का नियोजन कर रहा होता है।

लेकिन दुर्भाग्यवश अपने अंतिम परिणाम में ये मनुष्य जीवन का प्रयोजन सिद्ध नहीं कर पाते और किसी-न-किसी मोड़ पर व्यक्ति को इनके मायावी स्वरूप का बोध हो जाता है और उसे अध्यात्म की शरण में आना ही पड़ता है। तभी मनुष्य अपने वास्तविक स्वरूप का बोध कर पाता है।

स्वामी विवेकानंद के शब्दों में—मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी विशेषता है कि वह अपने वास्तविक स्वरूप में आत्मतत्त्व है। एक विज्ञान के रूप में स्वयं का अध्ययन, अनुसंधान मानवीय मन के लिए संभावित सबसे महान एवं स्वस्थ व्यायाम है। अनंत की खोज, अनंत को सानंत बनाने के संघर्ष, इंद्रियों की सीमाओं के पार जाने का प्रयास, जड़ पदार्थ पर चेतन आत्मतत्त्व की विजय और व्यक्ति की आध्यात्मिक प्रकृति का प्राकट्य, दिन और रात अनंत को जीवन का अंग बनाने की अंतहीन चेष्टा, यह संघर्ष स्वयं में सबसे गौरवमयी एवं अनुपम संघर्ष है।

स्वामी जी के शब्दों में, चरित्र निर्माण के संदर्भ में, श्रेष्ठता और महानता की ओर बढ़ने में, स्वयं व दूसरों के लिए शांति व सद्‌गति लाने के लिए, अध्यात्म सर्वोच्च प्रेरक शक्ति है। अध्यात्म उस अनंत शक्ति को अनुभूत करने का सबसे प्रेरक तत्त्व है, जो कि हर व्यक्ति का जन्मसिद्ध अधिकार है।

यदि समाज से इस धर्म-अध्यात्म को हटा दिया जाए, तो क्या बचेगा—कुछ नहीं, बल्कि धूर्तों की एक मंडली। इसीलिए अध्यात्म सही अर्थों में पशुता से देवत्व की ओर बढ़ने का मार्ग प्रशस्त करता है।

इसी आधार पर लगातार श्रेष्ठ विचार, आदर्शों में रमण साधकों का नित्य पुरुषार्थ रहता है। फिर जैसे विचार, वैसे ही कर्म, उसी के अनुरूप संस्कार—रूपाकार लेते चलते हैं तथा उसी के अनुरूप आचरण-व्यवहार एवं अंततः फिर नियति एवं भाग्य का निर्धारण होता है।

इसके लिए नियमित स्वाध्याय, सत्संग, इनके प्रकाश में आत्मविश्लेषण और इनके साथ जप-ध्यान एवं प्रार्थना का अनुपान, संग यज्ञ एवं तप का विधान, ईश्वर आस्था, समर्पण तथा निष्काम सेवा—ये सब मिलकर जीवन के प्रबल प्रारब्ध को क्षीण करते हैं तथा सांसारिक जीवन में कितनी भी जटिल समस्या हो, उसका जड़-मूल से उपचार करते हैं और व्यक्तित्व का गहनतम स्तर पर रूपांतरण संभव होता है। ❑

जीवन में उद्देश्य है जरूरी

मनुष्य धरती पर आता है तो एक लक्ष्य लेकर के आता है, एक उद्देश्य लेकर के आता है। चाहे वो उसे पूरा करे या न करे, पर हर मनुष्य के जन्म लेने से पहले—उसके जीवन का एक निश्चित लक्ष्य व एक निर्धारित उद्देश्य होता है।

यदि जीवन उद्देश्य से विहीन रह जाए, तो व्यक्तित्व के अंदर एक ऐसी रिक्तता, एक ऐसा खोखलापन भर जाता है, जिसे त्रासदीपूर्ण ही कहा जा सकता है। यदि मनुष्य द्वारा विकसित विद्याओं को ध्यान से देखें तो सहज ही यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उन सबका उद्देश्य, जीवन में उद्देश्य की खोज ही है। चाहे क्षेत्र धर्म का हो या विज्ञान का, चाहे क्षेत्र दर्शन का हो या मनोविज्ञान का—इन सबका दूरगामी लक्ष्य जीवन के उद्देश्य को प्राप्त करना ही कहा जा सकता है।

अमेरिका के एक विश्वविद्यालय में 60 ऐसे छात्रों का साक्षात्कार मनोवैज्ञानिकों ने लिया, जिन्होंने आत्महत्या का प्रयास किया था। सामान्य मत के विपरीत इनमें से 93 प्रतिशत छात्र/छात्राएँ ऐसे थे, जो शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी थे, कुशाग्र थे, सामाजिक गतिविधियों में कुशल थे, मिलनसार थे और आत्महत्या का प्रयास करने से पूर्व, उन्हें किसी भी प्रकार का मानसिक रोग या विकार नहीं था।

उनसे पूछे जाने पर उनमें से 85 प्रतिशत ने आत्महत्या करने के कारण के रूप में यह कहा कि उन्हें उनका जीवन अर्थहीन व दिशाविहीन लगने लगा था। स्पष्ट है कि मनुष्य सुख-साधनों से बढ़कर जीवन के लक्ष्य व उद्देश्य को प्राप्त करने को सोचता है और इसको प्राप्त करने पर ही जीवन को अर्थपूर्ण अनुभव करता है।

जब अमेरिका जैसे देशों में जहाँ सुख-साधन पर्याप्त हैं, वहाँ ऐसी घटनाएँ अगणित रूप में घटने लगें तो ऐसा लगता है मानो हम एक स्वप्न से जाग रहे हों और हमें अब यथार्थता का एहसास हो रहा हो।

स्वप्न यह कि यदि हम हर व्यक्ति को सुख के पर्याप्त साधन दे दें और उसके पास पैसा, घर, गाड़ी हो जाए तो उसका जीवन आनंद से भर जाएगा, परंतु ऐसा होता नहीं। जीवन सुविधामय हो जाने के बाद, मनुष्य यह सोचने को विवश हो जाता है कि जीवन का उद्देश्य क्या?

साधनों के बढ़ जाने से जीवन में शांति नहीं आ जाती। शांति तो मात्र जीवन में उद्देश्य को प्राप्त करने से आती है। जैसा कि प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक अल्बर्ट कामस ने एक बार कहा था कि 'मनुष्य के सामने सही अर्थों में एक ही चुनौती है कि वह इस तथ्य का सम्यक मूल्यांकन कर सके कि जीवन को क्यों जिया जाए?'

पशुओं की तरह हम संवेगों से प्रभावित होकर जीवन को नहीं जीते हैं। पशुओं को जीवन जीने के लिए मात्र संवेगों की आवश्यकता होती है। भूख लगी तो खा लिया, प्यास लगी तो पी लिया।

मनुष्य इससे ऊपर के तल की भी सोचता है कि क्या खाया जाए, क्यों खाया जाए और कैसे खाया जाए। एक सामान्य-सी जैविक क्रिया के लिए इतना चिंतन मनुष्य कर सकता है तो स्वाभाविक ही है कि अन्य क्रियाकलापों के लिए, जीवन के

लक्ष्य के लिए जो तड़प उसके मन में उठती होगी, उसकी तीव्रता कितनी होगी?

पूर्व में पुरखों से चली आ रहीं परंपराएँ, धर्म-धारणाएँ बहुत-सी ऐसी जिज्ञासाओं का समाधान ढूँढ़ने में मदद करती थीं, परंतु जबसे पारिवारिक ढाँचा व सामाजिक व्यवस्था चरमराई है—तब से ऐसा होना भी लगभग असंभव-सा ही हो गया है।

मनुष्य के जीवन की इसी आधारभूत जिज्ञासा को ध्यान में रखते हुए प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विक्टर फ्रैंकल ने एक नई मनोचिकित्सापद्धति प्रदान की, जिसका नाम 'लोगोथेरेपी' था। 'लोगो' शब्द लैटिन-ग्रीक से आया है—जिसका अर्थ उद्देश्य होता है।

इस चिकित्सा के उन्होंने तीन आयाम दिए—जीवन का उद्देश्य ढूँढ़ने की इच्छा, जीवन का अर्थ और अर्थ चुनने की स्वतंत्रता। फ्रैंकल के अनुसार जो इन तीनों आयामों को अपने व्यक्तित्व में धारण करते हैं—वे स्वतः ही जीवन को अर्थपूर्ण बना लेते हैं।

डॉ० फ्रैंकल का निष्कर्ष भारतीय चिंतन पर ही आधृत कहा जा सकता है। जिसके अनुसार जीवन जब तक अर्थपूर्ण नहीं होता, तब तक एक आंतरिक रिक्तता हमें परेशान करती ही रहती है। अतः हमें सदा जीवन को अर्थपूर्ण बनाने का प्रयत्न करना चाहिए।

❑

इंग्लैंड के प्रसिद्ध चिकित्सक लॉर्ड मोनिहन भीड़-भाड़ वाले स्थानों पर भी कुशलतापूर्वक ऑपरेशन कर दिया करते थे। एक बार उनसे एक पत्रकार ने पत्रकार-वार्त्ता में पूछा—"आपकी इस एकाग्रता का क्या रहस्य है, जो आप व्यस्ततम स्थानों पर, इतनी भीड़ के मध्य, इतनी सरलता से—जटिल-से-जटिल ऑपरेशन कर दिया करते हैं।"

लॉर्ड मोनिहन ने उत्तर दिया—"भीड़ कैसी? वहाँ तो मैं और मेरा रोगी, सिर्फ दो ही लोग उपस्थित होते हैं। औरों पर तो मेरा ध्यान ही नहीं जाता। रही बात एकाग्रता की तो मैं अपने को उस रोगी के स्थान पर देखता हूँ, जो इतनी भीड़-भाड़ वाले स्थान पर भी स्वयं को निश्चिंत होकर मुझे सौंप देता है और जब मैं उसको इतनी सहजता के साथ स्वयं को मुझे सौंपते देखता हूँ, तब मैं भी अपने को निश्चिंत होकर अपने भगवान को सौंप देता हूँ। बाकी का काम वे स्वयं कर देते हैं।" निर्भार होकर भगवान को समर्पण कर देना ही जीवन में सफलता का सच्चा रहस्य है।

पूज्य गुरुदेव जैसा मैंने देखा-समझा–18

वेदमाता गायत्री की उपासना

पेट में नौ महीने रखकर जन्म देने वाली और छाती का दूध पिलाने, दुलार की वर्षा करने वाली भौतिक माता से अधिक करुणा, ममता एवं वात्सल्य बिखेरने वाली सच्ची माता के रूप में वे वेदमाता की उपासना करते हैं। उपासना क्या भावना की हिलोरों में आत्मविभोरता की स्थिति ही उसे कहना चाहिए।

सुना है मीरा के साथ कृष्ण नाचते थे। सुना है रामकृष्ण परमहंस काली को अपने हाथ से भोजन कराते थे। सुना है चैतन्य महाप्रभु के साथ भगवान खेलते थे, सुना है अंधे सूरदास की लाठी पकड़कर कृष्ण उन्हें ले जाते थे। पता नहीं वे घटनाएँ कहाँ तक सत्य हैं, पर यहाँ आँखों से देखा गया है कि वे अपने अस्तित्व को पृथक अनुभव ही नहीं करते। चौबीस पुरश्चरणों में उनके निर्धारित कर्मकांड चले थे। अब तो उनकी ध्यान–भूमिका ही प्रखर है, जिसे तादात्म्य भाव की संज्ञा दी जा सकती है। बदले में क्या मिलता है उसे उनके ब्रह्मवर्चस के रूप में सभी ने देखा है।

मनुष्य के त्रिविध कलेवर और पंच–विधि आवरण में सब कुछ बीज रूप में विद्यमान है। स्थूलशरीर, सूक्ष्मशरीर, कारणशरीर के विविध कलेवर तीनों लोक कहलाते हैं और इनमें आधि भौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक संपदाओं के रत्न–भंडार छिपे बताए जाते हैं। अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश, आनंदमय कोश में पाँचों प्रधान देवताओं का निवास कहा गया है। षट्चक्रों से छह विश्वव्यापी महान संबंध–सूत्र जुड़े बताए जाते हैं। कुंडलिनी को अग्नि और सहस्रार को सोम कहा गया है।

अग्नि में परा, अपरा प्रकृति की द्विविध जड़–चेतन शक्तियाँ ओत–प्रोत हैं। कुंडलिनी उसी महाअग्नि का प्रतीक है। ब्रह्मरंध्र से सहस्रार कमल को विष्णु का क्षीरसागर, शिव का कैलास और ब्रह्मा का ब्रह्मलोक बताया जाता है। सोम का निर्झर अमृत का कलश यही है। तीसरा लोक आज्ञाचक्र दिव्यदृष्टिसंपन्न है, आदि रहस्यों का वर्णन योग–साधना के अंतर्गत आता है और कहा गया है कि यह मानवीय सत्ता अद्भुत एवं अलौकिक है। साधना तपश्चर्या से उस बीज रूप में विद्यमान दिव्य सत्ता का उत्थान होता है। गुरुदेव की गायत्री–साधना से उनका समग्र अंतःक्षेत्र इस प्रकार जाग्रत हो चुका है कि जो कुछ मानवीय पिंड में विद्यमान होगा, वह उन्हें उपलब्ध होकर रहेगा ।

कष्ट–पीड़ितों और अभावग्रस्तों को उनका अनुदान सदा मिलता रहा है। ये सहायताएँ करते रह सकना उपासना की उपलब्धियों द्वारा ही संभव हो सका है। परिवार के अगणित सदस्य उसका संभव लाभ सदा उठाते रहेंगे। रोतों को हँसाने में उन्हें मजा आता है, उसे उनका सबसे बड़ा चाव—विनोद या व्यसन कहा जा सकता है। जिन्हें वे कुछ ऊँचा उठा देखते हैं, उनकी कामनाओं और तृष्णाओं को तृप्त नहीं, समाप्त करते हैं और उन्हें बड़प्पन से छुड़ाकर मानवता में संलग्न करते हैं।

उनके साथ भी तो यही बीता है। जिन्हें और भी ऊँचा समझते हैं उन्हें और भी ऊँचा उपहार देते

हैं। अहंता और तृष्णा छोड़े बिना ब्रह्मवर्चस मिलता नहीं, सो जिसे सबसे अधिक प्यार करते हैं, उसकी तृष्णा, अहंता छीनकर अपने सदृश बनाने का जाल फैलाते हैं।

पखेरू फँसते तो विरले ही हैं, पर आंतरिक निष्ठा और अभिलाषा रहती उनकी यही है। त्रिविध अनुदान देने की राजा कर्ण जैसी, वाजिस्रवा जैसी उनकी ललक, जो निरंतर बढ़ती दिखती है और जिससे असंख्य लोग आशाजनक लाभ उठाते हैं, वह गायत्री माता का ही अनुदान है। उनकी उछल-कूद उसी उत्तराधिकार में प्राप्त संपदा के बलबूते चलती रहती है।

मनुष्य में देवत्व के उदय और धरती पर स्वर्ग के अवतरण का स्वप्न उन्होंने उसी आधार पर देखा है कि स्वर्ग की ज्ञानगंगा को धरती पर लाने के प्रयास में वे भगीरथ की तरह जूझते रहेंगे और गायत्री माता की दिव्य सत्ता उन्हें मुक्तहस्त से सहायता प्रदान करेगी।

गुरुदेव को तीन अभिभावकों के तीन अनुदान उपलब्ध होते रहे हैं। हिमालय पिता से प्रखर, पवित्र व्यक्तित्व। मार्गदर्शक गुरु से लोक-मंगल के लिए अभीष्ट सामर्थ्य। गायत्री माता से देवत्वयुक्त ब्रह्मवर्चस। ये तीनों ही उनकी उधार ली हुईं अनुदान में प्राप्त विभूतियाँ हैं। वे इस शर्त पर मिली हैं कि उनका एक-एक कण भी अपने लोभ-मोह के लिए, स्वार्थ साधने के लिए खरच न किया जाए, सो उन्होंने इस प्रतिबंध का सदा पूरा-पूरा ध्यान रखा है।

हम दोनों में से कोई अस्वस्थ हो जाता है तो दवा-दारू का ही सहारा लेते हैं। दूसरों को दी जाने वाली दिव्य सहायता में से एक कण भी अपने लिए प्रयोग नहीं करते। जिन्हें वे अपना अति घनिष्ठ मानते हैं, उनके प्रति भी ऐसी ही कठोरता बरतते हैं। घनिष्ठ आत्मीयता के साथ उनके दिव्य अनुदान ही जुड़े होते हैं, भौतिक आशीर्वाद नहीं।

भौतिक आवश्यकताएँ समाप्त ही कर ली हैं। इच्छा-आकांक्षाओं का उन्माद कब का हवा में उड़ गया। यदि कहीं कुछ रह भी गया हो तो उसे अपने निजी पुरुषार्थ से पूरा करते हैं या फिर सहते हैं। उसमें इस अमानत का एक कण भी खरच नहीं किया जाता, जो लोक-मंगल के लिए धरोहर के रूप में ली गई अथवा दी गई है।

स्वर्ग, मुक्ति, सिद्धि, विभूति, कामनाएँ सभी कुछ उनके लिए निरर्थक हैं। बार-बार जन्म लेना, बार-बार मरना और निरंतर सर्वतोभावेन इस परमसत्ता के इशारों पर चलते रहना ही उनका लक्ष्य है, जिसने उन्हें दिव्य माता, दिव्य पिता और दिव्य गुरु की महान उपलब्धियाँ देकर अनाथ-से-सनाथ बनाया है। वे दूसरों से यही कहते रहते हैं—दिव्य अनुदान, दिव्य प्रयोजन के लिए माँगे जाएँ तो उत्कृष्टता दिव्यसत्ता को द्रवित कर सकती है और सहायता के लिए बाधित भी। ❑

जिस समाज का दर्शन भ्रष्ट हो जाता है, उसे पतित-पराधीन ही बनकर रहना पड़ता है। यह तथ्य हमारे सामने स्पष्ट है। हमें अपने मनःक्षेत्र को फिर से जोतना पड़ेगा। उसके झंखाड़ उखाड़ने पड़ेंगे। अवांछनीय पूर्वाग्रहों को विदाई देनी पड़ेगी। तब यह भूमि इस योग्य होगी कि उस पर प्रगतिशीलता, विवेकशीलता बोई जा सकेगी और समृद्धि तथा विभूतियों की समर्थता और प्रखरता की फसल उगाई जा सकेगी। युग निर्माण योजना का यह प्रथम चरण ही ज्ञानयज्ञ है। इसे बौद्धिक क्रांति का नाम दिया जा सकता है। —*परमपूज्य गुरुदेव (हमारी युग निर्माण योजना)*

साधें अपना चिंतन, चरित्र और व्यवहार

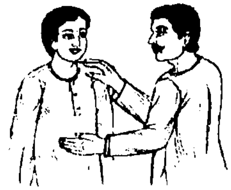

हर व्यक्ति जीवन में सफलता के साथ सुख-शांति और आनंद की चाह रखता है, लेकिन इसकी प्रक्रिया की जानकारी के अभाव में प्रायः गलत मार्ग को अपनाता है और अज्ञानतावश ऐसे कदम उठा बैठता है, जो सफलता, नाम-शौहरत व धन-वैभव तो दिला देते हैं, लेकिन इनके साथ में वह शांति-संतोष व आनंद से वंचित रह जाता है, जिसकी वह आस लगाए होता है।

इसमें जहाँ एक ओर मन की प्रकृति, इंद्रियों का स्वरूप और अहं का सूक्ष्म आच्छादन व्यवधान बनते हैं तो वहीं दूसरी ओर लोकचलन, परिवेश का प्रभाव और युग-प्रवाह अपना प्रभाव दिखाते हैं। जिसको समाज में स्वीकार्यता मिली है, उसी को श्रेष्ठ मानते हुए सामान्य जन अनुसरण करते देखे जाते हैं और यदि यह चलन भोगवादी सोच, क्षुद्र अहं व संकीर्ण स्वार्थ पर आधारित हो, तो फिर इनके चंगुल में व्यक्ति ऐसे कर्म कर बैठता है, जिसमें आध्यात्मिक उत्कर्ष तो दूर, लौकिक कल्याण भी सिद्ध नहीं हो पाता। उलटे पाप-पतन और असंतोष की खाई में व्यक्ति स्वयं को धकेल देता है।

वर्तमान युग-प्रवाह ऐसी ही सोच, जीवनशैली एवं ढर्रे पर चल रहा है, जिसमें आमजन तिनके की भाँति उड़ने के लिए विवश-बाध्य अनुभव कर रहा है और इस बहुमूल्य मानव जीवन के साथ खिलवाड़ हो रहा है। आध्यात्मिक संस्पर्श से रीता, ऐसा विकृत युग-प्रवाह व्यक्ति को जीवन के सर्वांगीण उत्कर्ष से वंचित रखता है।

इस ढर्रे पर चलते हुए व्यक्ति समाज के मानदंडों के अनुरूप एक प्रतिष्ठित स्थान पा सकता है, धन-वैभव का स्वामी हो सकता है, तथाकथित सफलता का तगमा सीने पर टाँग सकता है, लेकिन एकांतिक पलों में स्वयं को गहरी अशांति एवं असंतोष से आक्रांत पाता है।

सामाजिक चलन के पार औचित्य का भी निर्धारण करना होता है। इसके लिए व्यक्ति को अंतरात्मा की आवाज को सुनते हुए, अपने विवेक का अनुसरण करना पड़ता है। गुरु द्वारा बताए मार्ग को अपनाना पड़ता है। धारा के विपरीत चल रही मछली की भाँति समाज व जमाने के प्रचलित अधूरे, खोटे व संकुचित प्रवाह के विरुद्ध चलने का दुस्साहस करना पड़ता है, तब कहीं चलकर जीवन के सर्वांगीण उत्कर्ष का ठोस आधार तैयार होता है। परमपूज्य गुरुदेव का स्वयं का जीवन इसका ऐतिहासिक उदाहरण रहा है।

हिमालयवासी सूक्ष्म मार्गदर्शक सत्ता से साक्षात्कार के बाद परमपूज्य गुरुदेव लिखते हैं कि ऋषि दृष्टिकोण की दीक्षा जिस दिन मिली, उसी दिन यह भी कह दिया गया कि यह परिवार संबद्ध तो है, पर विजातीय द्रव्य की तरह है, बचने योग्य। इसके तर्क, प्रमाणों की ओर से कान बंद किए रहना ही उचित होगा।

इसलिए सुननी तो सबकी चाहिए, पर करनी मन की ही चाहिए। उनके परामर्श को, आग्रह को वजन या महत्त्व दिया गया और उन्हें स्वीकारने को मन बनाया गया, तो फिर लक्ष्य तक पहुँचना कठिन नहीं रहा। श्रेय और प्रेय की दोनों दिशाएँ एकदूसरे के प्रतिकूल जाती हैं। दोनों में से एक ही अपनाई जा सकती है। संसार प्रसन्न होगा, तो व्यक्ति की आत्मा रूठेगी।

आत्मा को संतुष्ट किया जाएगा, तो संसार की, निकटस्थों की नाराजगी सहन करनी पड़ेगी। आमतौर से यही होता रहेगा। कदाचित् ही कभी कहीं ऐसे सौभाग्य बने हैं, जब संबंधियों ने आदर्शवादिता अपनाने का सहर्ष अनुमोदन दिया हो। आत्मा को तो अनेक बार संसार के सामने झुकना पड़ा है। ऊँचे निश्चय बदलने पड़े हैं और पुराने ढर्रे पर आना पड़ा है। परमपूज्य गुरुदेव के प्रारंभिक जीवन में ऐसे कई प्रसंग आए, लेकिन अंतिम निर्णय आत्मा व गुरु के पक्ष में गया।

बाह्य चुनौतियों से निपटने के साथ पग-पग पर आंतरिक व्यवधानों से भी जूझना पड़ता है, जो कि हमारे निकटस्थ रहते हैं। इसके अंतर्गत इंद्रियों से जुड़े असंयम तथा आचरण-व्यवहार के बिगड़े अभ्यासों से दो-चार होना पड़ता है। बिगड़ैल मन पर लगाम कसनी पड़ती है। चित्त में जड़ जमा बैठे कुसंस्कारों के जड़-मूल से उपचार की योजना बनाकर क्रम साधना पड़ता है।

परमपूज्य गुरुदेव ने जगह-जगह पर इसके लिए व्यक्तित्व के परिष्कार के साथ अपनी पात्रता के विकास की बात कही है, जिसका अपना राजमार्ग है और इसका सर्वकालिक सिद्धसूत्र है, चिंतन-चरित्र और व्यवहार का परिष्कार।

वास्तव में शुभारंभ व्यक्ति के व्यवहार से ही होता है, जो हमारी वाणी के माध्यम से व्यक्त होता है। हमारा व्यवहार कितना अपनों का विश्वास जीत पा रहा है, दूसरों को आश्वस्त कर पा रहा है। हमारा वाणी-व्यवहार कितना समाज के लिए उपयोगी सिद्ध हो पा रहा है व इसके सहारे जीवन के विकट पलों का हम कितना सामना कर पा रहे हैं और सर्वोपरि हमारा व्यवहार आदर्शों की मानक कसौटी पर कितना खरा उतर पा रहा है—इन सबके प्रकाश में अपना मूल्यांकन करना होता है।

व्यवहार वस्तुतः सीधे हमारे चित्त से प्रभावित एवं संचालित होता है। हमारे जीवन के प्रति दृष्टिकोण, परिपक्व हो रहे विचार, हमारी धारणाएँ और इसके मूल में विद्यमान संस्कार इसके लिए जिम्मेदार होते हैं, जिनके अनुरूप यह निर्धारित होता है, कि वह प्रभावी होगा या अल्प प्रभावी या दुष्प्रभावी। अभिनय के तौर पर हम कितना ही अच्छा वाणी-व्यवहार क्यों न बनाकर रख लें, किंतु परिस्थिति के दबाव व जीवन की चुनौतियों का सामना यह कैसे कर पाता है, यहीं से वास्तविक मूल्यांकन प्रारंभ होता है। इसके साथ चारित्रिक स्तर पर कार्य करने की आवश्यकता अनुभव होती है।

इसके लिए फिर आदर्श व्यवहार से लेकर उत्कृष्ट चिंतन का सहारा लेना पड़ता है। सतत सकारात्मक, श्रेष्ठ एवं पावन चिंतन के साथ हमारा चित्त नए सिरे से रूपाकार लेने लगता है और व्यवहार मौलिक स्तर पर पुनर्परिभाषित होने लगता है।

इसीलिए विचारों की शक्ति को अपराजेय माना गया है व सकारात्मक विचारों की फौज को खड़ा करने की बात कही गई है। इसके निमित्त निरंतर श्रेष्ठ विचारों में रमण करना पड़ता है, अपने इष्ट-आदर्श को सामने रखना पड़ता है और स्वाध्याय एवं सत्संग का सहारा लेना पड़ता है। साथ ही विजातीय तत्त्वों से सजग-सावधान रहना पड़ता है।

इस तरह सतत श्रेष्ठ भाव-चिंतन के संग चरित्र का निर्माण होता है, जो वांछनीय व्यवहार को संभव बनाता है। इसके आधार पर मनचाही सफलता का मार्ग प्रशस्त होता है, जिसमें बाह्य उपलब्धि के साथ आंतरिक शांति-सुकून व आनंद भी शामिल होते हैं। इस राजमार्ग को समझते हुए समझदार व्यक्ति पहले अपने व्यक्तित्व पर कार्य करते हैं, अपनी योग्यता को बढ़ाते हैं, चेतना का परिष्कार करते हैं, अपनी पात्रता का अर्जन करते हैं और इस आधार पर एक सफल, सुखी व प्रेरक जीवन जीते हैं। ❑

प्राचीन भारत की युद्ध-प्रणाली

जीवन-रक्षा मनुष्य का प्रधान धर्म है। व्यक्तिगत हो अथवा सामूहिक, दोनों स्तरों पर मानवीय जीवन की सुरक्षा करना सदैव प्रासंगिकता का पर्याय रहा है। इसी सुरक्षा-वृत्ति ने विकसित होकर युद्ध एवं युद्ध-कौशल का रूप लिया है। विकास के ऐतिहासिक कालखंडों में अनेक बार युद्ध को समय की माँग के रूप में स्वीकार किया गया है जिसके फलस्वरूप युद्ध-प्रणालियों का उत्तरोत्तर विकास होता गया है। भारतीय संस्कृति के प्राचीन ज्ञान-विज्ञान में सैन्य विज्ञान की शिक्षा और विकसित युद्ध-प्रणाली का उपयोग देखा जा सकता है।

हमारे शास्त्रों में युद्ध-प्रणाली और अस्त्र-शस्त्रों का विस्तृत विवरण उपलब्ध है। युद्धास्त्रों की प्राप्ति, संधान और उनके प्रभावों का परिचय कराने वाले सैकड़ों आख्यान मिलते हैं। रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यों में तो युद्ध-प्रणाली का अत्यंत व्यापक स्वरूप प्रस्तुत हुआ है। चूँकि युद्ध चाहे विषम परिस्थितियों अथवा अन्य किन्हीं कारणों से किया जाता हो, परंतु मनुष्य जीवन में सदैव इसकी आवश्यकता पड़ती रही है। ऐसे में युद्ध-प्रणाली और उसके विज्ञान को जानना-समझना महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

इस संदर्भ में देव संस्कृति विश्वविद्यालय में भारतीय इतिहास एवं संस्कृति विभाग के अंतर्गत एक उल्लेखनीय शोध अध्ययन का कार्य संपन्न किया गया है। यह शोध वर्ष-2018 में शोधार्थी योगेंद्र सिंह द्वारा श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० रवींद्र सिंह के निर्देशन में पूर्ण किया गया, जिसका विषय है—**'रामायण एवं महाभारत में वर्णित युद्ध-प्रणाली—एक विवेचनात्मक अध्ययन।'** सैद्धांतिक एवं विवेचनात्मक विधि पर आधृत इस महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन को कुल आठ अध्यायों में विभाजित कर प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम अध्याय—'भूमिका' के रूप में प्रस्तुत किया गया है जिसमें शोध विषय का महत्त्व, अध्ययन की आवश्यकता, उद्देश्य एवं संबंधित साहित्य सर्वेक्षण का विवरण दिया गया है। इस शोध का उद्देश्य है रामायण तथा महाभारत की युद्ध-प्रणाली के वैशिष्ट्य को तथ्यात्मक रूप से उजागर करना। शोधार्थी की मान्यता है कि महाकाव्यकालीन युद्धास्त्रों के प्रकार, प्रविधि एवं उनकी वास्तविक शक्ति को वर्तमान पीढ़ी के समक्ष प्रकाश में लाना आवश्यक है, ताकि युद्ध-प्रणाली के हमारे प्राचीन ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकों से सभी भली भाँति परिचित हो सकें।

इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से चलचित्र के माध्यम से जब रामायण, महाभारत के युद्धास्त्रों की दिव्यता और संहारक क्षमता को देखते हैं तो विस्मय से भर जाना स्वाभाविक है, लेकिन उन युद्धास्त्रों की तथ्यात्मक एवं वैज्ञानिक विश्लेषण पर आधृत जानकारी के अभाव में उस काल के अस्त्र-शस्त्रों के प्रति सहज विश्वास कर पाना वर्तमान पीढ़ी के लिए मुश्किल है। ऐसे में यह अध्ययन पर्याप्त तथ्य आधृत जानकारी और ज्ञान प्रदान करने वाला है।

द्वितीय अध्याय है—'रामायण एवं महाभारत का रचनाकाल।' इसके अंतर्गत दोनों महाकाव्यों के रचनाकाल संबंधी प्रमुख तथ्यों को प्रस्तुत किया गया है।

यद्यपि दोनों के रचनाकाल को लेकर विद्वानों में पर्याप्त मतभिन्नता है, तथापि पूर्वी एवं पश्चिमी विचारकों ने अपने-अपने तर्क-तथ्यों के आधार पर इन महान ग्रंथों के रचनाकाल की चर्चा की है। रचनाकाल के निर्धारण में मुख्यतया चार पहलुओं पर विचार किया गया है—

(1) ऐतिहासिकता, (2) कालखंड, (3) मूलस्रोत और (4) पुरातात्त्विक एवं ऐतिहासिक साक्ष्य।

रामायण महाकाव्य को अत्यंत प्राचीन रचना माना गया है। भारतीय लोक-परंपराओं में इसे त्रेतायुग (लगभग 8,67,100 ईसापूर्व) की रचना मानते हैं। ज्योतिष गणना के आधार पर बाल गंगाधर तिलक जी ने राम का समय वैवस्वत मन्वंतर का चौबीसवाँ त्रेतायुग (लगभग 1,81,49,000 वर्ष पूर्व) बताया है तथा ऋषि वाल्मीकि एवं भगवान राम को उन्होंने समकालीन माना है, परंतु कुछ अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर विद्वानों ने रामायण की रचना को नौ लाख वर्ष पूर्व का माना है।

वस्तुतः इस महाकाव्य के रचनाकाल का उपयुक्त निर्धारण अत्यंत कठिन है; क्योंकि जितने विद्वानों ने विचार किया है, उनकी गणनाओं में पर्याप्त भिन्नता है। इसी प्रकार रामायण के मूलस्रोत को लेकर भी अनेक मत प्रस्तुत हुए हैं। कुछ वेदों को तो कुछ बौद्ध, जैन व पश्चिमी साहित्य को रामायण का स्रोत कहते हैं, परंतु भारतीय मूल विचारधारा में रामायण एक इतिहास है और राम का चरित्र एक ऐतिहासिक पुरुष का चरित्र है।

महाभारत के रचनाकाल को लेकर भी भिन्न-भिन्न विचार प्रस्तुत हुए हैं। कुछ विद्वान इसका काल 2500 से लेकर 5000 वर्ष पूर्व मानते हैं। इतिहासकार कल्हण के मत में 2448 ईसापूर्व महाभारत युद्ध हुआ था। विन्टरनित्स के अनुसार इस ग्रंथ की रचना ईसापूर्व चौथी शताब्दी में हुई है। महर्षि दयानंद के मत में भी तीन हजार वर्ष ईसापूर्व महाभारत का काल है। इस शोध में अनेक पूर्व एवं पश्चिम के विद्वानों के विचार, पुरातत्त्व के साक्ष्य, शिलापट्टिकाओं एवं ज्योतिषीय गणना के तथ्यों के आधार पर महाभारत का समय लगभग 310 ईसापूर्व को मान्य बताया गया है।

अध्ययन का तृतीय अध्याय है—'रामायण एवं महाभारत की विषयवस्तु।' इसके अंतर्गत दोनों महाकाव्यों की मुख्य अंतर्वस्तु के विभिन्न आयामों को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति में समाहित आदर्शों और जीवनमूल्यों के प्रति प्रेरणाओं की दृष्टि से रामायण और महाभारत महज महाकाव्य ग्रंथ मात्र न होकर जीवन चेतना का प्राण-प्रवाह हैं। यहाँ के व्यक्तिगत एवं सामाजिक जीवन में इनकी अमिट छाप मौजूद है। इसके साथ ही मनुष्य मात्र का जीवन, समाजगत संगठन और विभिन्न जीवन व्यवस्थाओं से जुड़े विचार, आदर्श एवं प्रेरणाएँ इनमें मौजूद हैं।

रामायण महाकाव्य में तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक व्यवस्था का विस्तृत वर्णन उपलब्ध होता है। मानवीय ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों का विकसित स्वरूप भी इसकी विषय वस्तु में समाहित है, जैसे—धर्म, शिक्षा, विज्ञान,

साहित्य, कला-कौशल, नगर, विवाह, आचार-विचार, वेशभूषा, युद्ध, अस्त्र-शस्त्र, आर्थिक जीवन, प्रशासन, प्रबंधन, राजनीति, चिकित्सा आदि।

महाभारत में भारत का विराट स्वरूप प्रस्तुत हुआ है। तत्कालीन समाज और संस्कृति के समस्त पहलू इस श्रेष्ठ ग्रंथ में मौजूद हैं, परंतु इसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पक्ष राजनीति, युद्ध और युद्ध-प्रणाली है। विराट, भीष्म, द्रोण, कर्ण व शल्य पर्वों में युद्ध और उससे संबंधित मर्यादाओं का वर्णन है। इतिहासवेत्ताओं के लिए भी यह ग्रंथ उस काल की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक स्थिति का जीवंत दस्तावेज है।

चतुर्थ अध्याय—'रामायण एवं महाभारत में सैन्य संगठन' है। इसके अंतर्गत सेना के प्रकार, सैन्य संगठन का प्रारूप एवं सेना की विभिन्न इकाइयों का विस्तृत विवेचन किया गया है। दोनों महाकाव्यों में सैन्य संगठनों की संरचना के सुदृढ़ आधार मौजूद हैं। इस संरचना में पहला है—सेना के प्रकार। सेना का संगठन एक तार्किक एवं वैज्ञानिक आधार पर किए जाने का इनमें उल्लेख है।

उस काल में सेना को चतुरंगिणी कहा जाता था। चतुरंगिणी में (1) पदाति (पैदल सैनिक) (2) अश्वारोही (घुड़सवार), (3) रथारोही (रथ पर चलने वाले) और (4) गजारोही (हाथी पर सवार) आते थे। सेना के उक्त चार अंगों के अतिरिक्त विष्टि अर्थात यातायात, आपूर्ति एवं संदेश की व्यवस्था करने वाले, नौसेना अर्थात नाव व जहाजों से संबंधित व्यवस्था, गुप्तचर विभाग अर्थात शत्रुपक्ष की गोपनीय सूचना प्राप्त करने वाली व्यवस्था, दैशिक अर्थात गुप्तसेना व सेना का मार्गदर्शन करने वाला सैनिक दल सम्मिलित थे।

इस काल में सैन्य संगठन के प्रारूप में योद्धाओं का वर्गीकरण किया जाता था, जैसे—यूथप, यूथपति, रथी, अतिरथी, महारथी और अर्द्धरथी आदि। वाहिनी, पृतना, चमू, अनिकिनी के नायकों को रथी, एक अक्षौहिणी सेना से युद्ध वाले को अतिरथी तथा इससे ज्यादा सेना से युद्ध करने वाले को महारथी कहा गया है। सेना की सभी इकाइयों का संचालन सेनापति द्वारा किया जाता था। उनका आदेश सर्वमान्य होता था। सैनिक धातु के जालीदार कवच धारण कर विभिन्न शस्त्र विद्याओं के ज्ञान रखने वाले होते थे।

सेना की सबसे छोटी इकाई (पत्ति) होती थी और सबसे बड़ी अक्षौहिणी। जैसे एक पंक्ति में एक रथ, एक हाथी, तीन घोड़ा, पाँच पदाति सम्मिलित रहते थे अर्थात कुल 10 की एक पत्ति कही जाती थी। इसी तरह 30 की सेनामुख, 90 की गुल्म, 270 की गण, 810 की वाहिनी, 2430 की पृतना, 7290 की चमू, 21870 की अनीकिनी तथा 218700 सैनिकों की सेना अक्षौहिणी कहलाती थी।

शोध का पंचम अध्याय है—'रामायण एवं महाभारत में युद्ध-प्रणाली' इसके अंतर्गत युद्ध के प्रकार व व्यूह रचना की विवेचना की गई है। युद्ध के प्रकारों में द्वंद्व युद्ध अर्थात दो योद्धाओं की आमने-सामने की लड़ाई। तुमुल युद्ध अर्थात भीषण युद्ध जिसमें चहुँओर अस्त्र-शस्त्र चल रहे हों, चीख-चीत्कार, हुंकार व विभिन्न प्रकार की आवाजें उठ रही हों। संकुल युद्ध अर्थात पैदल के साथ पैदल, अश्वारोही के साथ अश्वारोही आदि समान स्तर वाले से युद्ध करना।

कूट युद्ध अर्थात छल-कपट पूर्ण तरीके से धर्मयुद्ध के नियमों के प्रतिकूल युद्ध करना। मल्लयुद्ध अर्थात दो योद्धाओं के बीच बाहुबल से किया जाने

वाला युद्ध। इसके साथ ही सैन्य विन्यास भी इस काल की युद्ध-प्रणाली का एक महत्त्वपूर्ण अंग था। व्यूह-रचना के माध्यम से संपूर्ण सेना को व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध बनाए रखा जाता था। व्यूह- रचना के अनेक प्रकारों का इन महाकाव्यों में उल्लेख मिलता है; यथा—क्रोचव्यूह, गरुड़व्यूह, अर्द्धचक्राकारव्यूह, वज्रव्यूह, चक्रव्यूह, मंडलव्यूह, शृंगाटकव्यूह, महासागरव्यूह, मकरव्यूह, श्येनव्यूह आदि।

षष्ठ अध्याय है—'रामायण एवं महाभारत में वर्णित विविध प्रकार के युद्धास्त्र एवं उनकी प्रविधियाँ।' इसके अंतर्गत युद्धास्त्रों के विविध आकार-प्रकार एवं उनके संचालन-विधियों का विवेचन किया गया है। इस काल में पाँच प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का उल्लेख मिलता है—(1) स्वाभाविक शस्त्र, (2) निर्मित शस्त्र, (3) हस्तमुक्त, (4) मुक्तामुक्त तथा (5) यंत्रमुक्त।

इन युद्धास्त्रों में धनुष-बाण, तलवार, गदा, भाला आदि से लेकर दिव्यास्त्रों का भी वर्णन है। इससे यह भी तथ्य प्रकट होता है कि उस काल में भी अत्यंत विनाशक, प्रलयंकारी और अत्यधिक ऊर्जा वाले शस्त्रों का उपयोग किया जाता था। सभी शस्त्रों की उचित स्थिति, लक्ष्य संधान और बचाव आदि की प्रविधियों का प्रशिक्षण प्रदान भी किया जाता था, ताकि कुशलता से उनका संचालन किया जा सके।

शोध अध्ययन के सप्तम अध्याय में—'रामायण एवं महाभारत में वर्णित युद्ध-प्रणाली का वैज्ञानिक विश्लेषण' प्रदान किया गया है। दोनों महाकाव्यों में युद्धास्त्रों की उन्नत तकनीकों एवं मारक क्षमता का वर्णन है। वर्तमान के आधुनिक हथियारों जैसे बंदूक, मिसाइलें, परमाणु बम आदि के समान ही उस काल में भी अस्त्र-शस्त्रों की विशेषता वर्णित है। जैसे धनुष लॉन्चर की तरह काम करता था और बाण अथवा अस्त्र मिसाइल की तरह। अस्त्रों को कोडवर्ड या पासवर्ड की भाँति विशेष मंत्रों के द्वारा प्रक्षेपित किया जाता था।

आपस में अस्त्रों के टकराने और नष्ट करने की प्राचीन और वर्तमान पद्धति में पूरी तरह समानता देखी जा सकती है। वर्तमान के लेक्राइमेटर अथवा अश्रु गैस जैसी उस काल में सम्मोहनास्त्र की विधा थी। उस काल के अस्त्रों में यह भी विशेषता थी कि वे लक्ष्य-भेदन कर पुनः संधानकर्त्ता के पास लौट आते थे, जिसे अस्त्र का उपसंहार कहा जाता था। परमाणु बम के संदर्भ में अमेरिकी वैज्ञानिक रॉबर्ट ओपनहाईमर का मत था कि परमाणु विस्फोट का उपयोग प्राचीन भारत में किया जा चुका है।

उस काल के ब्रह्मास्त्र का तो वर्तमान के परमाणु बम से भी ज्यादा संहारक क्षमता से युक्त होने का उल्लेख मिलता है। नारायणास्त्र भी वर्तमान समय के मल्टी रॉकेट लॉन्चर की तरह का विशिष्ट अस्त्र था। बंदूक और तोप को भी महाभारत के भुशुंडी शस्त्र का परिष्कृत रूप कहा जा सकता है। इस प्रकार उस काल में भी उन्नत एवं उच्च कोटि के युद्धास्त्रों का प्रयोग आधुनिक विज्ञान के लिए गहन अन्वेषण का विषय है।

अंतिम अध्याय—'उपसंहार' है। इसके अंतर्गत सभी अध्यायों का सारांश प्रस्तुत करते हुए शोध-विषय के महत्त्व, वर्तमान प्रासंगिकता एवं शोध-निष्कर्ष को प्रस्तुत किया गया है। शोध के माध्यम से हमारी प्राचीन विद्याओं में से एक—युद्ध-प्रणाली और उसके विस्तृत आयामों एवं उन्नत विज्ञान को उजागर करने वाला यह अध्ययन अत्यंत ज्ञानवर्द्धक, प्रेरक और हमारे प्राचीन शास्त्रों के प्रति सर्वथा नया दृष्टिकोण प्रदान करने वाला है। ❑

अतिवादिता से बचें, मध्य मार्ग को अपनाएँ

जीवन जीना एक कला है। यह व्यक्ति पर निर्भर करता है कि वह इसे किस तरह से जीता है। उसके हाथ में ईश्वर ने तन, मन और अंतरात्मा के रूप में एक वीणा थमाई है। अब वह इससे कैसे सुर निकालता है, इसका उपयोग करता है या दुरुपयोग करता है या इसे यों ही छोड़ देता है, यह सब व्यक्ति पर निर्भर करता है।

हाँ, इतना सत्य है कि जीवन की अतियों के बीच इसका संगीत खो जाता है, जबकि मध्य मार्ग के गर्भ से मधुर संगीत गूँज उठता है। गीताकार ने भी विषादग्रस्त अर्जुन को इस मन:स्थिति से बाहर निकलने के लिए युक्ताहार, विहार और युक्त चेष्टा के रूप में मध्य मार्ग का उपदेश दिया था।

जीवन में पूर्णता पथ की डगर धीरे-धीरे पार होती है, अपार धैर्य एवं अनवरत श्रम के साथ जीवन के राजमार्ग पर बढ़ते रहना पड़ता है। शॉर्टकट व पगडंडियों के भरोसे इसे पार नहीं किया जा सकता है। व्यक्ति जहाँ खड़ा है, वहीं से नर से नारायण, जीव से शिव की महायात्रा पर आगे बढ़ना होता है।

मानवीय स्वभाव एवं प्रकृति का रूपांतरण समय के साथ घटित होता है। व्यक्तित्व के सचेतन विकास की संभावनाएँ क्रमिक रूप से साकार होती हैं। अतिवाद हर दृष्टि से घाटे का सौदा साबित होता है।

जीवन को समग्र रूप में समझते हुए, इसके मनोकायिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक पक्षों पर निरंतर कार्य करना पड़ता है, जिसके आधार पर स्वत: ही जीवन की चरम संभावनाएँ समय के साथ साकार होती हैं।

आहार-विहार का संतुलन पहला आधार है। युक्त आहार-विहार व निद्रा के साथ तन-मन का स्वास्थ्य एवं काय की निरोगिता सधती है। भूखे रहकर या ठूँसकर आहार, दोनों ही अतियों के बीच शरीर अधिक देर नहीं चल सकता। ऐसे में शरीर का दुर्बलता के साथ नाना प्रकार के रोगों का घर बनना तय है।

इसी तरह हमेशा ही सोते रहने या बिलकुल न सोने की दशा—दोनों जीवन में विसंगतियों का कारण बनती हैं। अत्यधिक श्रम और बिलकुल निठल्ले बैठे रहना, किसी भी रूप में उचित नहीं। प्रात: जागने से लेकर रात को सोने तक एक संतुलित एवं सधी हुई दिनचर्या ही स्वस्थ शरीर व सुखी-संतुष्ट जीवन का आधार रहती है।

मानसिक एवं बौद्धिक विकास के लिए भी श्रेष्ठ आहार व उचित व्यायाम की आवश्यकता होती है। बौद्धिक विकास ही लौकिक उत्थान का आधार है। मन-बुद्धि को एकदम खाली छोड़ देना, दिवास्वप्नों में खोए रहना या फिर अत्यधिक चिंतन में संलिप्त रहना, दोनों ही स्थितियाँ किसी भी रूप में वांछनीय नहीं रहतीं।

बौद्धिक प्रखरता एवं बलिष्ठता के लिए नियमित रूप से मन-बुद्धि को श्रेष्ठ विचारों में निमग्न रखना पड़ता है, जो श्रेष्ठ पुस्तकों के अध्ययन एवं चिंतन-मनन के साथ संभव होता है। इस निमित्त नित्य निकाले गए कुछ पल हर दृष्टि से लाभकारी रहते हैं।

अपने भावनात्मक एवं व्यावहारिक विकास में भी इसी नीति को अपनाना पड़ता है। अपने

विकास के साथ दूसरों के साथ उचित व्यवहार, कर्त्तव्यपालन एवं सेवा, एक संतुलित जीवन का आधार हैं। परिवार की उपेक्षा, समाज से कटे रहना और किसी से कोई लेना-देना नहीं, ऐसा सामान्य इनसान के लिए किसी भी रूप में न तो संभव है और न ही वांछनीय।

दो ही व्यक्ति इस अवस्था में रह सकते हैं, पहला परमहंस और दूसरा पागल। सामान्य इनसान दूसरों के साथ भावनात्मक आदान-प्रदान के आधार पर ही आत्मिक संतोष पाता है, भावनात्मक रूप से पुष्ट होता है। आत्मविस्तार की यही प्रक्रिया व्यक्ति को अध्यात्म के क्षेत्र में प्रवेश दिलाती है, लेकिन यहाँ दोनों अतियों से सावधान रहने की आवश्यकता है।

दूसरों से एकदम कटे रहना या फिर दूसरों के प्रति मोहग्रस्त, आसक्त, राग पीड़ित रहना, ये दोनों स्थितियाँ उचित नहीं। लोक-व्यवहार में अपने कर्त्तव्यों के प्रति सजगता, जरूरतमंदों की सहायता, सेवा-शुश्रूषा ही राजमार्ग है, जो जीवन को आत्मसंतुष्टि और आनंद के भाव के साथ आप्लावित करता है।

इन्हीं आधार पर जीवन में व्यावहारिक अध्यात्म का समावेश होता है। सब कुछ छोड़कर जंगल गुफा में चले जाना, पारिवारिक उत्तरदायित्वों के प्रति उदासीनता, एकदम मौन धारण कर लेना, अन्न-जल का त्याग आदि—ये अतिवादी कदम अध्यात्म-क्षेत्र में देखे जाते हैं, जो अपवाद रूप में उचित हो सकते हैं, लेकिन सर्वसामान्य के लिए तो मध्यमार्ग ही उचित एवं वरेण्य रहता है।

आहार का उद्देश्य शरीर की क्षुधापूर्ति व इसका पोषण है। इस निमित्त उचित आहार शरीर की आवश्यकता है। इसी तरह संयमित, मर्यादित रहते हुए, अतियों से बचते हुए इंद्रियों के स्वस्थ-संतुलित सुखभोग की आवश्यकता पूरी हो सकती है। परमपूज्य गुरुदेव ने इसीलिए गृहस्थ जीवन को एक तपोवन की संज्ञा दी है।

मन की साधना भी मध्यम मार्ग के आधार पर ही सरल व संभव होती है। इसका निग्रह अतिवाद के सहारे नहीं किया जा सकता। अत्यधिक दबाव के हटते ही फिर इसे प्रतिक्रियास्वरूप दोगुने वेग के साथ प्रहार करते देखा जा सकता है।

इसके विपरीत थोड़ा मन की मानते हुए और थोड़ा इसे अनुशासन में ढालते हुए, शनैः-शनैः एक हाथ प्यार का और दूसरा दुलार का, की नीति को अपनाते हुए मन पर काबू पाया जा सकता है। मन की साधना में यह मध्य मार्ग का चयन ही उचित रहता है।

कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययागमौ।
कश्चाहं का च मे शक्तिरितिचिन्त्यं मुहुर्मुहुः॥

समय क्या है? मेरे मित्र कौन हैं? देश क्या है? मेरी आय और व्यय कितने हैं? मैं क्या हूँ और मुझमें कितनी शक्ति है? ये छह बातें मनुष्य को निरंतर सोचते रहना चाहिए।

जीवनलक्ष्य के संदर्भ में परमपूज्य गुरुदेव का दिया गया सूत्र-वाक्य यहाँ प्रखर दिशाबोधक है कि समाज की सच्ची सेवा करते हुए आत्मकल्याण जीवन का उद्देश्य है। समाज से कट कर कोरे आत्मकल्याण की बात एक तरह का अतिवादी स्वार्थभरा कदम ही मानी जाएगी; जबकि जीवन की समग्रता को साधते हुए, संतुलित जीवनशैली का मध्यम मार्ग ही वरेण्यम् पथ है, जिसमें आत्मकल्याण के साथ लोक-कल्याण, दोनों प्रयोजन सिद्ध होते हैं। ❑

पैदल भी चलें

विज्ञान और तकनीक के आधुनिक युग ने इनसान के जीवन को सुख-सुविधा संपन्न बना लिया है। माउस के एक क्लिक पर, मोबाइल पर उँगली दबाते ही कितने सारे काम बैठे-बिठाए हो जाते हैं। ऐसे में स्वाभाविक रूप से व्यक्ति अधिक आरामतलब हो गया है। फिर कोविड के बाद जीवन ऑनलाइन प्रारूप का इतना अभ्यस्त हो गया है कि व्यक्ति की शारीरिक हलचलें सीमित हो गई हैं और शारीरिक श्रम के अभाव में तमाम तरह के स्वास्थ्य संबंधी असंतुलन पैदा हो रहे हैं।

पहले ही बिगड़ी जीवनशैली स्वास्थ्य संबंधी कई रोगों का कारण बनी हुई थी, उसके साथ चहारदीवारी तक सीमित जीवन ने स्थिति को और बदतर कर दिया है। हृदयरोग से लेकर मधुमेह, मोटापा, तनाव, अनिद्रा, रक्तचाप जैसी व्याधियाँ आम होती जा रही हैं। इनके साथ बढ़ा-चढ़ा तनाव-अवसाद जीवन-ऊर्जा को निचोड़ते हुए, मानसिक संतुलन बिगाड़ रहा है। ऐसे में रचनात्मकता एवं कार्य की उत्पादकता कम हो रही है और जीवन की गुणवत्ता एवं संतुष्टि का स्तर बुरी तरह से प्रभावित हो रहा है।

इनके उपचार के लिए शारीरिक एवं मानसिक स्तर पर कई तरह की चिकित्सा पद्धतियाँ प्रयोग में लाई जा रही हैं; जिनमें सर्वसुलभ एवं प्रभावी है पैदल चलने का अभ्यास। इसमें अच्छे जूते के अतिरिक्त अन्य किसी विशेष सामग्री की आवश्यकता नहीं पड़ती। प्रतिदिन यदि कुछ मिनट से लेकर कुछ घंटे तक इसको दिनचर्या में शामिल कर लिया जाए, तो इसके अनगिनत लाभों से जीवन को कृतार्थ किया जा सकता है।

उपरोक्त वर्णित अधिकांश समस्याओं के समाधान पैदल चलने के साथ पाए जा सकते हैं। पैदल चलने पर हो रहे तमाम शोध अध्ययन इसके वैज्ञानिक आधार को भी पुष्ट करते हैं और दिनचर्या में शामिल करने पर कुछ ही समय में व्यक्ति स्वयं इनके लाभों को प्रत्यक्ष अनुभव कर सकता है।

नित्य कितना पैदल चलें, यह व्यक्ति की स्थिति पर निर्भर करता है। व्यक्ति की आयु, स्वास्थ्य की स्थिति, कार्य की व्यस्तता जैसे कारकों के आधार पर इसे तय किया जा सकता है। वैसे प्रतिदिन 10000 कदम पैदल चलना एक आदर्श मानक माना गया है, जो लगभग 8 किमी की दूरी जितना रहता है; जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार एक व्यक्ति को नित्य कम-से-कम 8000 कदम अवश्य पैदल चलना चाहिए, जो 6 किमी के लगभग ठहरते हैं। शेष व्यक्ति अपनी सामर्थ्य व स्थिति के अनुरूप इसे कम-अधिक भी कर सकते हैं।

आज की व्यस्त दिनचर्या में यदि विधिवत् व्यायाम, योग, जिम या किसी अन्य खेल आदि में समय देना कठिन हो रहा हो, तो पैदल चलने का अभ्यास करते हुए शारीरिक श्रम की आवश्यकता को सहज रूप में पूरा किया जा सकता है।

नित्य यदि आधा घंटा भी टहलने की आदत डाली जाए, तो इसके साथ हृदय रोग का खतरा कम हो जाता है। अमेरिकन हार्ट असोसिएशन के अनुसार, थोड़ा तेज गति से पैदल चलना हृदय के लिए लाभकारी होता है, इससे हृदय का रक्त-संचरण तीव्र होता है, रक्त में कॉलेस्ट्रॉल का स्तर कम होता है और रक्तचाप स्थिर होता है।

एक शोध में पाया गया कि सप्ताह में पाँच दिन कम-से-कम आधा घंटा पैदल चलने से हृदय रोग होने की संभावना लगभग 19 प्रतिशत तक कम हो जाती है और यदि चलने की दूरी को बढ़ाया जाए तो इसके लाभ और बढ़ जाते हैं। इसके साथ शरीर का भार नियंत्रण में रहता है, जो मोटापे से रक्षा करता है।

टहलना ऊर्जा के स्तर को बढ़ाता है, जो मनोदशा को बेहतर बनाने में मदद करता है। एक अध्ययन के अनुसार, पैदल चलने के साथ मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र से स्रावित होने वाले एंडोर्फिन हॉर्मोन में वृद्धि होती है, जिससे तनाव के स्तर में कमी आती है, मस्तिष्क अधिक स्वस्थ अनुभव करता है और अल्जाइमर, डिमेंशिया जैसे रोगों का खतरा कम हो जाता है। टहलना मधुमेह की संभावनाओं को कम करता है, रक्त के संचार को दुरुस्त रखता है।

पैदल चलने के साथ गहरे श्वास का अभ्यास फेफड़ों की कार्यक्षमता को बढ़ाता है; क्योंकि पैदल चलने में ऑक्सीजन का प्रवाह तेज होता है, इससे न केवल फेफड़े मजबूत होते हैं, बल्कि इससे जुड़े कई रोगों से भी बचाव होता है; क्योंकि बाहर खुली हवा व विशेषकर दिन की रोशनी में चलना विटामिन-डी की खपत को बढ़ाता है। इसके साथ हड्डियों को पोषण मिलता है। साथ ही चलने के साथ हड्डियों व मांसपेशियों का व्यायाम होता है और ये मजबूत बनती हैं।

विशेषज्ञों का कहना है कि रात को भोजन के उपरांत कम-से-कम बीस मिनट अवश्य टहलना चाहिए, इससे हमारे पाचनतंत्र को शक्ति मिलती है और आहार के जल्दी पचने में सहायता मिलती है। टहलना नींद की गुणवत्ता में वृद्धि करता है, टहलने के साथ रक्तचाप में सुधार आता है, रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है रोगों से जूझने का शारीरिक तंत्र भी मजबूत होता है।

यहाँ तक कि यह कैंसर जैसे घातक रोग के खतरे को कम करता है। एक अध्ययन में 1000 व्यक्तियों पर फ्लू के मौसम में शोध किया गया। इन्हें आधा-से-पौना घंटा मध्यम गति से पैदल चलने का अभ्यास कराया गया, इन प्रतिभागियों में श्वसन मार्ग के संक्रमण व रोग का खतरा 43 प्रतिशत तक कम पाया गया। पैदल चलने से आयु तक में वृद्धि होती पाई गई है। शोध से पता चला है कि औसत गति से रोज चलने पर मृत्यु का खतरा 20 प्रतिशत कम हो जाता है, जबकि तेज गति से रोज चलने पर मृत्यु का खतरा 24 प्रतिशत तक कम हो जाता है।

पैदल चलना तनाव के स्तर को भी कम करता है। इस तरह पैदल चलने से मानसिक स्वास्थ्य में सुधार होता है। अध्ययनों से स्पष्ट हुआ है कि पैदल चलने से चिंता, अवसाद तथा नकारात्मक मनोदशा को कम करने में सहायता मिलती है। उद्विग्नता कम होती है तथा व्यक्ति की मनोदशा में सुधार होता है और आत्मसम्मान में अभिवृद्धि होती है। टहलते समय व्यक्ति अकेला होता है, ये एकांतिक पल उसे अपने सुधार के लिए सोचने का अवसर देते हैं।

साथ ही शोधकर्त्ताओं ने पाया है कि चलने से विचारों का प्रवाह खुलता है और रचनात्मकता बढ़ती है। अतः किसी भी प्रकार की दुविधा में फँसने पर टहलने के अभ्यास की सहायता ली जा सकती है। इस तरह टहलना जीवन में संतुलन को साधने में सहायक रहता है।

इस तरह यदि टहलने को जीवनशैली का अभिन्न अंग बनाया जाए, तो इसके साथ जीवन की गुणवत्ता में सुधार किया जा सकता है। पाया गया है कि जो नित्य प्रातः भ्रमण करते हैं, वे अपने जीवन में अधिक प्रसन्न रहते हैं। निश्चित रूप से इनकी रचनात्मकता में नए पंख लग जाते हैं और कार्य की उत्पादकता में आश्चर्यजनक सुधार होते हैं।

अतः हर व्यक्ति को अपनी जीवनचर्या में पैदल चलने को अभिन्न रूप से जोड़ना चाहिए। अपनी व्यस्तता के अनुरूप दिन में प्रातः-सायं या जब भी समय मिले, इसको अधिक-से-अधिक

स्थान दिया जा सकता है। अपने वाहनों को ऑफिस से थोड़ा दूर खड़ा कर पैदल चलने का अवसर निकाला जा सकता है। लिफ्ट के बजाय सीढ़ियों पर चलने को प्राथमिकता दी जा सकती है।

औसतन हर व्यक्ति को कम-से-कम आधा घंटा पैदल चलना चाहिए। एक स्वस्थ व्यक्ति थोड़ी तेज चाल में पैदल चल सकता है; जबकि एक वृद्ध व्यक्ति सामान्य चाल के साथ उतना ही चले, जितने में वह थक जाता हो। चलते हुए ध्यान रहे कि श्वास जितना गहरा हो सके, लेते रहें। अपने श्वास पर ध्यान केंद्रित रखें और पैदल चलने की आदत को निश्चित अपनाएँ। ❑

आजीवन सदस्य कृपया ध्यान दें

आपने जब आजीवन सदस्यता स्वीकार की थी, तब से अब तक महँगाई इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि पत्रिका की आजीवन सदस्यता का निर्वहन कर पाना कठिन हो रहा है। अब पूर्व की सुरक्षानिधि में आजीवन सदस्यता बनाए रखना संभव नहीं जान पड़ता। जो सदस्य रुपये 150 (सन् 1982) में बने थे, उन्हें अभी तक पत्रिका भेजी जा रही है; जबकि वार्षिक चंदा रुपये 15 (सन् 1982) से बढ़कर रुपये 300 हो गया है—भविष्य में और बढ़ता रहेगा। ऐसी स्थिति में आजीवन सदस्यता को पुरानी शर्तों पर जारी नहीं रखा जा सकेगा।

अब नई व्यवस्था के अनुसार आजीवन सदस्यता 20 वर्ष तक सीमित रहेगी। उसका अब चंदा रुपये 6000/- होगा। हम सबकी यही अपेक्षा है कि जो श्रद्धा-स्नेह का संबंध लंबे समय से बना हुआ है, वह और भी प्रगाढ़ होगा। अखण्ड ज्योति का आलोक आपको एवं अन्य परिजनों को आलोकित करता रहेगा।

इसके लिए हम आपके समक्ष निम्न विकल्प प्रस्तुत कर रहे हैं—

(1) आपका आजीवन शुल्क जो भी जमा है, उसे काटकर शेष रुपया और भेज दें, ताकि आपकी आजीवन सदस्यता (20 वर्षीय) बनी रहे। राशि बैंक ड्राफ्ट/चैक/RTGS/NEFT से भेजी जा सकती है। **राशि भेजने के लिए बैंकों का विवरण पत्रिका में पृष्ठ सं. 53 पर दिया गया है।**

(2) आपकी आजीवन सदस्यता समाप्त कर दी जाए एवं जमा सुरक्षानिधि वार्षिक चंदा में ट्रांसफर कर दी जाए। उस राशि से वार्षिक चंदा रुपये 300/- के हिसाब से जब तक का चंदा बने अखण्ड ज्योति भेज दी जाए।

(3) यदि किन्हीं कारणोंवश ऐसा संभव न हो पा रहा हो तो अपने बैंक खाते की जानकारी भेजने का अनुग्रह करें, जिससे आपको राशि वापस भेजी जा सके। विवरण मिलने पर आपके खाते में सीधे रुपया भेज दिया जाएगा।

पत्र व्यवहार में अपनी सदस्य संख्या, नाम, पता, फोन नंबर, ई-मेल का उल्लेख अवश्य करें।

आप सबको पत्र द्वारा सूचित किया जा चुका है, संभव है किसी कारणवश पत्र न मिला हो। अपनी सहमति का पत्र डाक/ई-मेल द्वारा भेजने का अनुग्रह करें।

—अखण्ड ज्योति संस्थान, मथुरा-281003

Email-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

▶ 'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◀

तत्परता एवं निष्कामता से करें सत्कर्म

(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की पच्चीसवीं किस्त)

[इससे पूर्व की किस्त में श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के छब्बीसवें श्लोक की व्याख्या प्रस्तुत की गई थी। इस श्लोक में श्रीभगवान कहते हैं कि हे पार्थ! सत्, ऐसा यह परमात्मा का नाम सत्तामात्र में और श्रेष्ठ भाव में प्रयोग किया जाता है तथा प्रशंसनीय कर्म के साथ 'सत्' शब्द जोड़ा जाता है। परमात्मा की सत्ता की उपस्थिति का नाम ही सत् भाव है। कोई परमात्मा को साकार रूप में अनुभव करता है तो कोई निराकार रूप में; किसी के लिए उनका रूप निर्गुण है तो किसी के लिए सगुण पर ये नाम, रूप इत्यादि के भेद मात्र मतावलंबियों के लिए हैं—परमात्मा का सही स्वरूप तो उसका 'सत्' रूप ही है, जिसके अंतर्गत ये सभी वर्गीकरण आ जाते हैं। इसीलिए परमात्मा का 'सत्' स्वरूप उनकी सत्ता की उपस्थिति के रूप में प्रयुक्त होता है तथा साधु भाव या श्रेष्ठ भाव के रूप में भी प्रयुक्त होता है। इस भाव में दया, करुणा, कल्याण आदि समस्त श्रेष्ठ भाव समाहित हो जाते हैं।

इसी चिंतन को और परिभाषित करते हुए भगवान कहते हैं कि 'प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थ युज्यते'—अर्थात परमात्मा की प्राप्ति के लिए अलग-अलग मत-संप्रदायों में जितने साधन बताए गए हैं, जैसे दान, धार्मिक अनुष्ठान इत्यादि वे सब प्रशंसनीय, श्रेष्ठ कर्म भी परमात्मा के इसी 'सत्' रूप की अभिव्यक्ति हैं। सारांश में भगवान इस श्लोक में ये कह रहे हैं कि जो भी साधक परमात्मा की प्राप्ति के मार्ग के पथिक हैं, उनके कर्म सत्यमय भी हों, मंगलकारी, कल्याणकारी भी हों एवं साथ ही पवित्र भी हों।]

इसके उपरांत श्रीभगवान कहते हैं कि

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते॥ 27॥

शब्दविग्रह—यज्ञे, तपसि, दाने, च, स्थितिः, सत्, इति, च, उच्यते, कर्म, च, एव, तदर्थीयम्, सत्, इति, एव, अभिधीयते।

शब्दार्थ—तथा (**च**), यज्ञ (**यज्ञे**), तप (**तपसि**), और (**च**), दान में (**दाने**), जो (**या**), स्थिति है, (**स्थितिः**), वह (**सा**), भी (**एव**), सत् (**सत्**), इस प्रकार (**इति**), कही जाती है (**उच्यते**), और (**च**), उस परमात्मा के लिए किया हुआ (**तदर्थीयम्**), कर्म (**कर्म**), निश्चयपूर्वक (**एव**), सत् (**सत्**), ऐसे (**इति**), कहा जाता है (**अभिधीयते**)।

अर्थात यज्ञ, तप एवं दानरूपी क्रिया में जो निष्ठा है, वह भी 'सत्' कही जाती है और उस परमात्मा के निमित्त किया जाने वाला कर्म भी 'सत्' कहा जाता है। यहाँ भगवान कृष्ण अर्जुन से कह रहे हैं कि साधक के हृदय में सात्त्विक कर्मों यथा यज्ञ, तप एवं दान को करने के लिए जो निष्ठा, लगन एवं तत्परता होती है—वह भी परमात्मा के 'सत् भाव' या सद्भाव का स्वरूप है।

▶ **'नारी सशक्तीकरण' वर्ष** ◀

यहाँ यह भाव स्पष्ट किया गया है कि उक्त कार्य यदि परमात्मा के निमित्त या निष्काम भाव से किए जाएँ तभी वे 'सत्' भाव में सम्मिलित किए जाते हैं। इसी कारण से भगवान कृष्ण कहते हैं कि '**कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते**' अर्थात उस परमात्मा के निमित्त किए गए कार्य। ऐसा कहने के पीछे का कारण स्पष्ट है कि यज्ञ, तप एवं दान जैसे कर्म तो वो भी करते हैं, जिनके भाव सात्त्विक नहीं होते, परंतु ऐसा करने मात्र से उन्हें यथोचित परिणाम नहीं मिल पाता।

उदाहरण के तौर पर यज्ञ दक्ष प्रजापति ने भी किया था, परंतु उस यज्ञ का भाव परमात्मा के निमित्त न होकर स्वयं के अहंकार का पोषण था, अत: वह यज्ञ अशुभ परिणाम को लेकर आया। ऐसा ही रावण द्वारा किए गए यज्ञ का परिणाम निकला, जब भगवान हनुमान ने आकर उसका विध्वंस कर दिया।

ऐसे ही अनेक असुरों के द्वारा किए गए तपोनुष्ठानों का विवरण पौराणिक आख्यानों में मिलता है, जिनकी परिणति अंतत: अशुभ ही हुई थी। यही कारण है कि भगवान कृष्ण यहाँ इन कर्मों का उल्लेख तो करते हैं, परंतु साथ ही उनमें यह शर्त भी जोड़ते हैं कि इन कर्मों में यदि परमात्मा के प्रति निष्काम समर्पण जुड़ा हो तभी ये सद्भाव का प्रतीक बन पाते हैं।

यहाँ भगवान एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा को जन्म देते हैं। प्रचलित परंपरा के अनुसार हर कोई यही समझता है कि यज्ञ, दान एवं तप इतने श्रेष्ठ कोटि के कार्य हैं कि ये जैसे भी किए जाएँ, सत्कर्म ही माने जाएँगे।

इसी अवधारणा को दूर करने के लिए भगवान कहते हैं कि कर्म भी तभी सत्कर्म माने जाएँगे, जब इनको करते समय की भावना श्रेष्ठ एवं मंगलकारी होगी। एक तो इन कर्मों को करते समय साधक में इनको करने के लिए निष्ठा, तत्परता, लगन हो एवं दूसरा करते समय का भाव भी उत्कृष्ट हो अन्यथा ये निकृष्ट कर्म हो जाते हैं।

इसलिए श्रीभगवान के द्वारा कहा गया यह श्लोक एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा को जन्म देने के अतिरिक्त सशक्त प्रगतिशील चिंतन को भी जन्म देता है और कर्मों के आध्यात्मिक आधार को और भी ज्यादा पुष्ट करता है। (क्रमश:)

यथा धेनुसहस्त्रेषु वत्सो विन्दति मातरम्।
तथा पूर्वकृतं कर्म कर्तारमनुगच्छति॥

— महाभारत शांति पर्व, 181/16

जैसे बछड़ा हजारों गायों में से अपनी माँ को ढूँढ़कर वहाँ पहुँच जाता है, वैसे ही पूर्वकृत कर्म भी कर्त्ता का अनुसरण करते हुए उसके पास आ पहुँचते हैं।

युवापीढ़ी को नशे से बचाएँ, सृजन में लगाएँ

नशा सामाजिक एवं आध्यात्मिक, दोनों ही दृष्टियों से निषिद्ध वस्तुओं में है। इसे करने से मात्र वही व्यक्ति प्रभावित नहीं होता, जिसने नशा किया, वरन अपनी शारीरिक, मानसिक, पारिवारिक, सामाजिक एवं आर्थिक हानि करने के अतिरिक्त वह घर की सुख-शांति, बच्चों के संस्कार और पीढ़ियों का सम्मान गँवा बैठता है। साथ ही एक जिम्मेदार नागरिक से देश भी वंचित रह जाता है। इसलिए इस समस्या का समय रहते निराकरण करना मात्र धार्मिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से मूल्य का नहीं, बल्कि राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से भी अतिशय महत्त्व का विषय हो जाता है।

प्रारंभ में तो व्यक्ति नशा करने की आदत को शान बघारने की दृष्टि से ही लेता है, पर एक बार जब वो बीड़ी-सिगरेट मुँह को लग गई तो फिर छूटने का नाम नहीं लेतीं। चाहे वो बीड़ी-सिगरेट हों या शराब पीने की लत या फिर भाँग, अफीम, गाँजा लेने की आदत हो—शुरुआत का तरीका एक जैसा होता है, पर बढ़ते-बढ़ते एक दिन उसके दुष्प्रभाव के क्षेत्र में पूरा समाज आ जाता है; क्योंकि नशा करने वालों के मध्य से ही हिंसा, अपराध की खबरें भी तो आती हैं।

सारांश में कहें तो नशा करना एक ऐसी बीमारी है जिसे करता तो एक व्यक्ति है, पर उसकी सजा सारा समाज भुगतता है। इस समस्या की विषमता एवं व्यापक दुष्प्रभाव को पूज्य गुरुदेव ने सबसे पहले अनुभव किया था और गायत्री परिवार की सप्तक्रांतियों में से एक प्रमुख आंदोलनों के रूप में दुष्प्रवृत्ति उन्मूलन-सत्प्रवृत्ति संवर्द्धन को लिया। उनसे प्रेरणा पाकर लाखों लोगों ने अपने जीवन की दिशा को बदला एवं सदा-सर्वदा के लिए इन दुष्प्रवृत्तियों की गिरफ्त से स्वयं को मुक्त कराया।

उसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए गायत्री परिवार ने एक राष्ट्रव्यापी अभियान '**आओ बनाएँ व्यसन मुक्त भारत**' को प्रारंभ किया। लक्ष्य एवं उद्देश्य सरल एवं स्पष्ट था कि व्यसन में लगी भारतीय यौवन की ऊर्जा को सृजन में नियोजित किया जा सके। इस राष्ट्रव्यापी अभियान के अंतर्गत विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय के मृत्युंजय सभागार में नशामुक्त भारत पर विशेष व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया।

भारत सरकार के युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय द्वारा देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रांगण में राष्ट्रीय सेवा योजना के स्वयंसेवियों के 10 दिवसीय पूर्व गणतंत्र परेड शिविर (मध्य क्षेत्र)-2023 में मुख्य अतिथि के रूप में आगमन हुआ। माननीय श्री कौशल किशोर जी (आवास और शहरी कार्य के केंद्रीय राज्यमंत्री) ने गायत्री परिवार के कार्यों को देख अभिभूत होते हुए कहा कि गायत्री परिवार केवल राष्ट्रनिर्माण ही नहीं, बल्कि विश्व का निर्माण भी कर रहा है।

उन्होंने सभी स्वयंसेवकों के समक्ष नशामुक्ति अभियान पर अपनी बात रखते हुए कहा कि हम राष्ट्रीय सेवा योजना शिविर जैसे सेवा के माध्यम से राष्ट्र को नशामुक्त बनाने में गति प्रदान कर सकते हैं। उन्होंने नशे के शिकार स्वयं अपने पुत्र के हुए आकस्मिक दुर्भाग्यपूर्ण देहावसान का उदाहरण देते हुए सभी को चेताया व नशे से होने वाले

दुष्प्रभाव एवं उससे यथासंभव बचाव के उपायों की भी गहनता से चर्चा की।

इस अवसर पर माननीय मंत्री जी ने विद्यार्थियों को नशामुक्त भारत बनाने का संकल्प भी दिलाया। देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने कहा कि जिस तरह मनुष्य के अंदर छिपी प्रतिभा को गायत्री महामंत्र की साधना निखारती है, उसी तरह प्रशिक्षण से प्रशिक्षणार्थियों के अंदर हुनर जगता है। आओ बनाएँ नशामुक्त भारत का आवाहन उन्होंने विद्यार्थियों से किया।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति जी ने सभी का आभार प्रकट किया। इससे पूर्व राष्ट्रीय सेवा योजना के लखनऊ क्षेत्र के निदेशक श्री एस० कबीर जी ने राष्ट्रीय सेवा योजना के कार्यों की विशेष जानकारी दी। उन्होंने बताया की यह कैंप भारत के पाँच क्षेत्रों में आयोजित किया गया है, जिसमें उत्तराखंड में स्थित देव संस्कृति विश्वविद्यालय को मध्य क्षेत्र का केंद्र चयनित किया गया है।

ज्ञात हो कि इस शिविर में उत्तराखंड, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार एवं झारखंड के 195 महाविद्यालयों के विद्यार्थी प्रतिभा कर रहे हैं। राष्ट्रीय सेवा योजना से प्रत्येक युवा को जुड़ना चाहिए और परिवार, समाज एवं राष्ट्र की सेवा करने का अवसर प्राप्त करना चाहिए। इस अवसर पर प्रतिकुलपति जी ने माननीय मंत्री श्री कौशल किशोर जी एवं श्री एस० कबीर जी को प्रतीक चिह्न भेंटकर सम्मानित किया।

विदित हो कि शिविर के उपरांत चयनित विद्यार्थी सन्–2024 की दिल्ली की गणतंत्र दिवस परेड में हिस्सा लेंगे। इस शिविर के उद्घाटन सत्र को संबोधित करते हुए कैबिनेट मंत्री आदरणीया श्रीमती रेखा आर्य जी ने कहा था कि राष्ट्रीय सेवा योजना शिविर के माध्यम से संस्कृति, सेवा जैसे गुणों को जानने का अवसर मिलेगा। मानवता के गुणों को प्रत्येक व्यक्ति अपने अंदर उतारने का प्रयास करें। राष्ट्रीय सेवा योजना से प्रत्येक युवाओं को जुड़ना चाहिए और परिवार, समाज एवं राष्ट्र की सेवा करने का अवसर प्राप्त करना चाहिए।

विगत दिनों देव संस्कृति विश्वविद्यालय में तीन दिवसीय अंतरराष्ट्रीय योग शिखर सम्मेलन का आयोजन भी किया गया था। सम्मेलन में मुख्य अतिथि के रूप में आर्ट ऑफ लिविंग फाउंडेशन के संस्थापक एवं प्रमुख आदरणीय श्रीश्री रविशंकर जी एवं अखिल विश्व गायत्री परिवार प्रमुख एवं देव संस्कृति विश्वविद्यालय के माननीय कुलाधिपति परमश्रद्धेय डॉ० प्रणव पंड्या जी ऑनलाइन माध्यम से उपस्थित रहे।

अंतरराष्ट्रीय योग शिखर सम्मेलन के कार्यक्रम की अध्यक्षता कर रहे देव संस्कृति विश्वविद्यालय के प्रतिकुलपति जी ने उद्घाटन सत्र में आए अतिविशिष्ट अतिथि के रूप में परमार्थ निकेतन आश्रम के अध्यक्ष एवं अध्यात्मिक प्रमुख स्वामी चिदानंद सरस्वती जी, मोक्षायतन अंतरराष्ट्रीय योगाश्रम के संस्थापक स्वामी भारतभूषण जी, योग संस्थान की निदेशक माँ हन्साजी एवं स्वामी विवेकानंद योग अनुसंधान संस्थान के संस्थापक एवं कुलपति डॉ० एच० आर० नागेंद्र जी का गायत्री मंत्र दुपट्टा देकर स्वागत किया।

सम्मेलन की शुरुआत परमपूज्य गुरुदेव एवं परमवंदनीया माताजी के समक्ष दीप प्रज्वलन कर की गई। कुलगीत के पश्चात मंचासीन सभी अतिथियों ने अपने वक्तव्य से सभी प्रतिभागियों को लाभान्वित किया। उद्घाटन सत्र के अंत में मंच पर उपस्थित सभी अतिथियों को पूज्य गुरुदेव का साहित्य एवं हस्तनिर्मित जूट का बैग देकर सम्मानित किया गया। इस कार्यक्रम में विश्वविद्यालय के सभी आचार्यगण, अधिकारीगण, छात्र–छात्राएँ एवं सम्मेलन में प्रतिभाग किए सभी प्रतिभागी उपस्थित रहे।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय और यूसर्क के संयुक्त तत्त्वावधान में कचरा प्रबंधन और आर्थिक विकास पर इसका प्रभाव विषय पर एक दिवसीय राष्ट्रीय कार्यशाला का आयोजन किया गया।

इस कार्यशाला में मुख्य अतिथि श्री हरितऋषि विजयपाल बघेल जी (ग्रीन मैन ऑफ इंडिया), श्री जगदीश लाल पाहवा जी (अध्यक्ष हरिद्वार, नागरिक मंच), देव संस्कृति विश्वविद्यालय के माननीय कुलपति श्री शरद पारधी जी, माननीय प्रतिकुलपति जी, कुलसचिव श्री बलदाऊ देवांगन जी, एस.एम.जे.एन. डिगरी कॉलेज से श्री विजय शर्मा जी, कोर विश्वविद्यालय से डॉ० पशुपति नाथ जी, लक्ष्य सोसाइटी से स्वाति त्यागी जी पर्यावरण विज्ञान विभाग से डॉ० मोहित शर्मा आदि सभी वक्ताओं ने संयुक्त रूप से कूड़ा प्रबंधन करके आर्थिक स्थिति को कैसे सुधारा जा सकता है—इस विषय पर अपने-अपने विचार रखे।

इस कार्यक्रम में विश्वविद्यालय में ही एक रुद्राक्ष का पौधा भी रोपित किया गया। श्री हरित ऋषि विजय पाल बघेल जी ने देव संस्कृति विश्वविद्यालय के द्वारा पर्यावरण संरक्षण की दिशा में किए जा रहे कार्यों की प्रसंशा की और कहा कि उत्तराखंड के सभी विश्वविद्यालयों को देव संस्कृति विश्वविद्यालय की तर्ज पर ही जीरो वेस्ट मैनेजमेंट और पॉलीथिन फ्री कैंपस के लिए काम करना चाहिए।

देव संस्कृति विश्वविद्यालय में आयोजित इस कार्यशाला में दो प्रतियोगिताओं यथा निबंध और स्लोगन का आयोजन किया गया। जिसमें विजयी प्रतिभागियों को सम्मानित किया गया। इस पूरे कार्यक्रम में लगभग 100 से भी अधिक प्रतिभागियों ने प्रतिभाग किया। ❑

पता-फोन परिवर्तन सूचना

अखण्ड ज्योति संस्थान का स्थान परिवर्तित हो गया है, नया पता अब इस प्रकार है—

अखण्ड ज्योति संस्थान

बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड, जयसिंहपुरा, मथुरा (281003)

बदले हुए नए फोन नंबर

दूरभाष नंबर : (0565) 2403940, 2412272, 2412273, 2972449

मोबाइल नंबर : 9927086291, 7534812036, 7534812037, 7534812038, 7534812039

कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस.एम.एस. न करें

नया ई-मेल-akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

अखण्ड ज्योति पत्रिका हेतु बैंक खातों का विवरण

जमा रसीद की प्रति एवं विवरण ई-मेल, पत्र द्वारा भेजें; अन्यथा राशि का समायोजन नहीं हो पाएगा।

Beneficiary –	Akhand Jyoti Sansthan	I.F.S. Code	Account No.
S.B.I.	Ghiya Mandi Mathura	SBIN0031010	51034880021
P.N.B.	Chowki Bagh Bahadur, Mathura	PUNB-0183800	1838002102224070
I.O.B.	Yug Nirman Tapobhoomi, Mathura	IOBA0001441	144102000000006

विदेशी धन बैंक में सीधे जमा न करें, ड्राफ्ट द्वारा भेजें।

परमवंदनीया माताजी की अमृतवाणी

ज्योति कभी बुझेगी नहीं

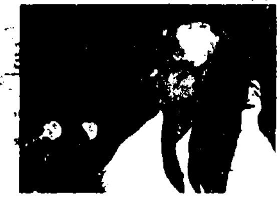

परमवंदनीया माताजी के व्याख्यानों की यह विशिष्टता है कि वे भावों के जागरण का कार्य भी करते हैं और उद्देश्यों की प्रतिष्ठा का भी। अपने एक ऐसे ही प्रस्तुत उद्बोधन में परमवंदनीया माताजी सभी परिजनों को यह स्मरण दिलाती हैं कि सभी गायत्री परिजन पूज्य गुरुदेव और वंदनीया माताजी के अंग-अवयव ही हैं। वंदनीया माताजी कहती हैं कि वे और पूज्य गुरुदेव सदा अपने बच्चों को उस तरह से सुरक्षित रखते हैं, जैसे टिटिहरी अपने अंडों का ध्यान रखती है। वंदनीया माताजी स्मरण दिलाती हैं कि गुरुसत्ता के स्थूलदृष्टि से दूर हो जाने पर भी किसी को भी यह कभी नहीं समझना चाहिए कि वे हमसे दूर हो गए हैं। वे कहती हैं कि उनकी जलाई यह ज्योति कभी बुझेगी नहीं और हमें, हर गायत्री परिजन को सदा एक ही प्रार्थना करनी चाहिए कि हम गुरुवर की तरह बन सकें। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को..........।

मिनी वसंत पर्व

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

हमारे आत्मीय परिजनो! यह मिनी वसंत पर्व है। मिनी वसंत पर्व क्यों है? वसंत पर्व तो अभी एक महीना पहले ही व्यतीत हुआ है, फिर यह कैसा मिनी वसंत पर्व है? हाँ बेटे! यह मिनी वसंत पर्व है। जो हमारे परिजन छूटे हुए थे। जिनको कि हम दायाँ-बायाँ हाथ कहते हैं। कहीं ऐसा न हो कि पीछे ये कहें कि हमें तो गुरुजी के चरणस्पर्श करने को भी नहीं मिले। हम इस लायक भी नहीं समझे गए कि हमको उनके दर्शनों का लाभ मिलता और हम कम-से-कम चरणस्पर्श तो कर लेते।

दर्शन तो संभव हैं, हमें दूर से भी हो सकते हैं; लेकिन हम एक क्षण, एक पल के लिए जो चरणस्पर्श कर सकते थे, हमारी माँ ने हमको इस लायक भी नहीं समझा कि हमको बुलाया जाता। इसलिए यह मिनी वसंत पर्व है। आप लोग जो यहाँ बैठे हुए हैं, कहाँ-कहाँ से और कितनी-कितनी दूर से आए हैं? क्यों साहब! आपने हमको क्यों नहीं बुलाया? इतने आपके चौबीस लाख बेटे हैं।

हाँ बेटे! वह भी हमारे ही हैं, पर जितना आपके लिए हमारी भावना है, स्नेह और प्यार है, उतना उनके लिए थोड़ा कम है। कम क्यों है? इसलिए कम है कि जो कमाऊ पूत होता है, माँ-बाप उसकी तरफ देखते हैं, निगाह रखते हैं कि यह लड़का कमाल का है। यह सारे घर का, परिवार का पालन-पोषण करता है। उसकी तरफ माँ-बाप का ध्यान ज्यादा जाता है। जो उत्तरदायित्व को जितना निभाता है, उतना ही उसको शक्ति देने के लिए माता-पिता ज्यादा आगे को धकेलते हैं।

प्रगति का द्वार

एक कारीगर था। वह खिलौने बनाता था। उसका बेटा भी खिलौने बनाता था और रोज उसे बेचने के लिए जाता था। उसका पिता रोज यह कहता था कि देखो भाई, अभी तुम्हारे इस खिलौने में कमी रह गई। यह तो तुम्हारा चवन्नी का ही बिका है। फिर उसने और प्रयास किया और अठन्नी का बिकने लगा।

पिता ने कहा—नहीं, अभी यह ठीक नहीं है। अभी तो तुमको इसमें और मेहनत-मशक्कत करनी पड़ेगी। हमको? हाँ, तुमको और करनी पड़ेगी। फिर वह बारह आने का बिका। फिर वह एक रुपये का बिका।

एक दिन बच्चा बोला कि पिताजी आपकी बात समझ में नहीं आई। हमने तो आप से भी ज्यादा बढ़िया खिलौने बनाए हैं और आप हमारे काम में नुक्ताचीनी निकालते रहते हैं; जबकि हमारे खिलौने ज्यादा पैसे के बिके।

बस बेटा! यही समझ ले कि तेरी प्रगति का द्वार रुक गया है। तेरे अंदर अहम् की भावनाएँ आने लगी हैं। अब तू आगे नहीं बढ़ सकता है। क्योंकि तेरे अंदर वह क्षुद्रता आ गई कि हम सब कुछ जानते हैं और सब कुछ करने लायक हो गए हैं और आप हमारे काम में उँगली करते हैं। बुजुर्ग हमें आगे बढ़ाते हैं, हिम्मत देते हैं, साहस देते हैं और जो भी कुछ उनके अंदर, पिता के अंदर कला होती है, सारी-की-सारी कला और सारी-की-सारी जो अपनी विशेषता है, वह बच्चों को देते हुए चले जाते हैं।

आप हमारे बच्चे हैं

बेटे! माँ के पास जो कुछ भी होता है, वह सब बच्चे के लिए छिपाकर रखती रहती है। बाप से भी छिपाकर रखती गई कि जब जरूरत पड़ेगी, बेटे को झट थमा देंगे। तू ले जा बेटा, तेरे काम आएगा। जबकि वह जानती है कि यह करने लायक है, यह समर्थ है, फिर भी माँ की ममता होती है न कि बेटे हैं। वही स्थिति हमारी है। आप जान नहीं पाएँगे कि हमको आप कितने प्रिय लगते हैं। जैसे एक टिटिहरी अपने अंडे को अपनी छाती से लगाकर सेती है और अपनी जान की बाजी लगा देती है। उन्हीं में से हम और गुरुजी हैं।

प्रयाग में एक सभा का आयोजन किया गया था। कार्यक्रम की अध्यक्षता सर गंगानाथ झा कर रहे थे। जैसे ही द्विवेदी जी मंच पर आए तो सर गंगानाथ उनके चरण छूने को नीचे झुके।

उधर द्विवेदी जी भी सर गंगानाथ के पैर छूने का प्रयत्न करने लगे। द्विवेदी जी बोले—"आप मेरे गुरु हैं, आपने मुझे संस्कृत लिखना सिखाया है तो मैं ही आपके चरणस्पर्श करूँगा।"

सर गंगानाथ ने उत्तर दिया—"नहीं द्विवेदी जी! मेरे गुरु तो आप हैं। आखिर मुझे हिंदी लिखना तो आपने ही सिखाया है।"

प्रत्येक परिजन को हम टिटिहरी के अंडे के तरीके से सेते रहते हैं और उनको समय-समय पर भावनाओं से लेकर के, प्रेरणाओं से लेकर के, मार्गदर्शन से लेकर के कि कहीं यह विचलित तो नहीं हो रहा है; कहीं इसके पाँव तो नहीं डगमगा रहे; कहीं यह दुनिया की दौड़ में; कहीं चमक-दमक में, कहीं लुभावनेपन में तो नहीं आ

गया? आ गया है, तो उसको सँभालने के लिए भरसक प्रयास किया गया। इतना किया गया कि हमने हार नहीं मानी। तब तक उसको बनाते ही रहे। न बना पाते, यह बात अपने ऊपर नहीं लागू होती। हमारे ऊपर लागू तब होती है, जब हम उसको बना न सकते होते। उसका समर्पण न होता।

एक शिष्य ने अपने गुरु से कहा—"गुरुदेव! आप तो सर्वव्यापी हैं, आप तो सब कुछ कर सकते हैं, आप तो बना सकते हैं।" उन्होंने कहा—"बेटे! हाँ बना तो सकते हैं, इसमें तो कोई शक नहीं है।" बेटे! जिस दिन से गुरुजी ने अपने गुरु का पल्ला पकड़ा है, फिर उन्होंने पीछे की जिंदगी को नहीं देखा है। आगे-आगे चलते हुए, आगे आने वाले दूरगामी परिणामों को देखा है। उन्होंने पीछे को मुड़कर नहीं देखा।

उससे पहले संभव है कि साधारणतः जैसे व्यक्ति जीवन जीते हैं, वैसे ही जिया होगा; लेकिन जब से गुरु की छत्रछाया उनको मिली और प्रेरणा मिली और छाया के रूप में उनके ऊपर प्रकाश आया, उस दिन से अपने जीवन का क्रम ही बदल दिया और पूर्णरूप से समर्पित हो गए। उन्होंने अपने समय का समर्पण, अपनी वाणी का समर्पण, अपनी लेखनी का समर्पण कर दिया।

आप समझते हैं कि जहाँ-के-तहाँ ही रह गए होंगे, नहीं बेटे! आज वे इतने ऊँचे हैं कि जैसे हिमालय के बराबर ऊँचाई और सागर की तरह गहराई के तरीके से हैं। आज उनका मस्तक ऊँचा है और गर्व से कह सकते हैं कि ये ऐसी शानदार जिंदगी है कि कोई भी नहीं जी सकता, जो शानदार जिंदगी हमने जी है। कीड़े-मकोड़े की तो सभी जीते हैं; लेकिन जिसे शानदार जिंदगी कहना चाहिए, जो समाज के लिए अनुदान और वरदान समाजसेवी के लिए होना चाहिए, उन्होंने भरपूर सेवा की है और अभी और करेंगे।

ज्योति कभी बुझेगी नहीं

बेटे! पिछले दिनों में कुछ ऐसा हुआ कि मेरे मुँह से निकल भी गया। कुछ वैसा निकला था, जो सही बात है, तो भी निकल ही गया। उसका उलटा अर्थ लगाया गया। उलटा अर्थ कौन-सा लगाया? अखण्ड ज्योति में एक लेख चला गया कि ज्योति अभी बुझी नहीं। चंडीगढ़ का एक लड़का रोता-बिलखता आया।

उसने यह कहा कि मैं इसलिए अपने परिवार को लेकर के आया हूँ कि मैंने यह सुना है कि वसंत पर्व पर गुरुजी अपना शरीर छोड़ देंगे। ऐ तेरी की, अरे बेटा! तू ये क्या खबर लाया। तू तो वह खबर लाया है कि मेरे पेट में न मालूम क्या होने लगा है? अच्छा होता कि तूने अपना यह मुँह बंद रखा होता। वह जाएँगे, तो जाएँगे ही। हाँ, हमने यह भी कहा है कि हम अपना बिस्तर समेट रहे हैं, इसका मतलब यह नहीं है कि हम मरने जा रहे हैं।

अरे! मरने की क्या चल रही है? अभी हमने इतने कार्यकर्त्ता बुलाए हैं और जो 500 कार्यकर्त्ता हमारे यहाँ रहते हैं, इनको भावना कौन देगा? इनको प्यार कौन देगा, इनको बनाएगा कौन? अभी तो हमारी इतनी जिम्मेदारियाँ हैं, हम कैसे पीछे हटेंगे? अभी हम पीछे नहीं हटेंगे। आप लोगों को अभी तो हमें बहुत बनाना है, अभी तो आप अनगढ़ हैं। अभी तो किस मेहनत से, मशक्कत से हम यहाँ तक आप लोगों को ला पाए हैं। अभी तो आपको बहुत कुछ बनाना बाकी है, अभी कहाँ हैं आप इस लायक? अभी हम कहते हैं कि बेटे! जिम्मेदारियाँ सँभालो। गुरुजी के जो उत्तरदायित्व हैं, उनके ऊपर जो वजन है, उसको हलका करो। आप उस वजन को उठाइए।

माताजी! आप यह कह रही थीं कि भाई, माता-पिता जो बुजुर्ग हो जाते हैं, बूढ़े हो जाते हैं, तो रिटायरमेंट में आ जाते हैं, रिटायर हो जाते हैं। हाँ बेटा! सही कहा था कि रिटायर हो जाते हैं और रिटायर्ड का मतलब यह नहीं होता कि आमतौर पर जैसे लोग रिटायर्ड होते हैं, फालतू समय गँवाते हैं और चारपाई पर मगरमच्छ के तरीके से पड़े रहते हैं और सारा समय गुजारते रहते हैं।

बेटे! हम उनमें से नहीं हैं। हम तो तिल-तिल करके जलेंगे और गलेंगे और समाज के लिए बराबर अनुदान देते रहेंगे और उसकी जो भी सेवा बन पड़ेगी, वह हम करते रहेंगे।

उसके लिए उन्होंने चाहा कि एकांत में रह करके हम ज्यादा-से-ज्यादा अपनी शक्तियों को एकत्रित करें और आप लोगों को बाँटें और दें। नहीं तो यह स्थूलशरीर, स्थूल का काम करेगा। स्थूल का मतलब गुरुजी को हर समय घेरे रहेंगे। अभी देख लो।

3 घंटे तक लाइन लगी है। जरा लगाम ढीली कर दें, तो बस। सोना भी हराम, खाना भी हराम, सब हराम। गुरुजी जब बाहर जाते थे, लेट्रिन जाते थे, वहाँ भी लोग खड़े रहते थे। देखते रहते थे कि कब गुरुजी निकलें और हम अपनी बात शुरू करें।

तो बेटे! बताइए कि इतना महत्त्वपूर्ण काम जो कि सारे विश्व का लेकर के चले हैं, जो प्रभाव परिवर्तन का लेकर के चले हैं, वह कैसे होगा और जो हम आपसे कराना चाहते हैं, वह कैसे होगा? जरा बताना तो सही, जब शरीर ही नहीं रहेगा, तो कैसे होगा? शरीर की आवश्यकता है। मन की आवश्यकता है। मन से आप हमसे जुड़े हैं। शरीर से आप जुड़े हैं, भावनाओं से आप जुड़े हैं। उसकी अभी आवश्यकता है। कब तक है आवश्यकता? यह अभी बस यहाँ की, यहीं रहने दो कि कब तक की आवश्यकता है, पर अभी उसकी जरूरत है। यह तो मैं आपके दिमागों की सफाई कर रही हूँ कि ऐसा जरूर कहा गया था।

हम दावे से कहते हैं कि हमने कहा है और कहेंगे कि स्थूल-से-सूक्ष्म की ज्यादा वैल्यू है और ज्यादा ताकत है। बम, एकदम छोटा-सा होता है, जरा-सा जर्रा होता है और क्या तहस-नहस कर देता है। बेटे! सूक्ष्मतत्त्व की ज्यादा शक्ति होती है। उन्होंने कहा कि एकांत में हम रहेंगे और एकांत में रह करके अपनी सूक्ष्मशक्तियों को एकत्रित करेंगे और हमको जो बड़े काम करने हैं, उनमें लगाएँगे और इनसे क्या कराएँगे? इनसे तो आपको जो विज्ञप्तियाँ बाँटी गई हैं, उनको आप पढ़ लेना।

अखण्ड ज्योति अखंड है। वह खंडित नहीं होगी।

तेल निबट जाएगा तो बत्ती जलेगी, बत्ती निबट जाएगी तो दीया जलेगा।

जब तक जीवन रहेगा, जला जाएगा।

अपने पड़ोसियों तक प्रकाश पहुँचाने के लिए टिमटिमाता रहा जाएगा।

—परमपूज्य गुरुदेव

(अखण्ड ज्योति, जनवरी 1940)

अपने जैसा बना लें गुरुवर

हाँ, एक बात मैंने यहाँ छोड़ दी थी कि एक शिष्य ने अपने गुरु से कहा था। उसने यह कहा कि गुरुदेव! आप हमको वैसा बना दीजिए, जैसे कि आप हैं। उन्होंने कहा—बेटा! बना तो दूँ, पर मेरे हाथ की बात नहीं है। क्यों नहीं है? आप तो बना सकते हैं। हाँ, बना तो सकते हैं, इसमें कोई शक नहीं है, लेकिन तब बना सकते हैं, जबकि तेरे

अंदर समर्पण का भाव हो तब। कैसा समर्पण? जैसा अर्जुन का समर्पण था कृष्ण के प्रति।

उन्होंने कहा कि आप जैसा चाहें, वैसा कराएँ, आपके हम सुपुर्द हैं। जो भी आप कराना चाहें, जो भी हम से काम लेना चाहें, हम आपका काम करेंगे। उन्होंने कहा कि लड़ाई मैदान में लड़ेंगे। जो भी आप कहेंगे, वही हम करेंगे। तो बेटे! मैं कह रही थी, कि अभी एक शिष्य ने अपने गुरु से कहा कि आप बनाइए। उन्होंने कहा कि बेटे! बना दूँ, पर एक काम तू कर। क्या करूँ? तू तिनके के समान हो जा। अपने सारे अस्तित्व को मिटा दे, छोड़ दे, हम में मिला दे। जिस दिन तेरा अहं हट जाएगा और तू तिनके के बराबर छोटा-सा हो जाएगा, तो बस उस दिन मैं तुझे सँभाल लूँगा।

उस दिन मैं दावा करता हूँ कि अपने मुकाबले के जैसा मैं हूँ, वैसा ही तुझे बना दूँगा, पर अभी तो तेरे अंदर बहुत खामियाँ हैं, तो मेरे बराबर कैसे बन जाएगा? अभी तो तू मेरे पाँव के धोवन के बराबर भी नहीं बन सकता है। अभी तो तू पाँव की उँगली जैसा भी नहीं बन सकता है, तो तू बता, मेरे बराबर कैसे शक्तिशाली बनेगा? शक्तिशाली तो तब बनेगा, जबकि सारी-की-सारी अहंता को हटा देगा।

दो नहीं, एक हैं हम

अपने लोभ, प्रलोभन और जो अहंता है, जो आपकी कमजोरियाँ हैं, उनको हटा दो और जो मुँह में जकड़े हुए हो, उस जकड़न को हटाओ। तो क्या करें? घर-गृहस्थी को छोड़ दें। नहीं, बेटे! ये नहीं कहा है कि घर-गृहस्थी को छोड़ दीजिए। घर-गृहस्थी को हमने भी नहीं छोड़ा है। कहाँ छोड़ा? पत्नी भी है, बच्चे भी हैं, बेटी भी है, बेटा भी है, जमाई भी है, सब हैं। कहाँ छोड़ा है, बता? कहीं नहीं छोड़ा, लेकिन हाँ, वो छोड़ दिया, जो स्वार्थ था।

स्वार्थ से परे हट गए हैं, स्वार्थ उनको डिगा नहीं सकता, स्वार्थ उनको डगमगा नहीं सकता। बस, यही बनने की कसौटी है और यही आप आज उनसे माँगने आए हैं। चाहे तो इसे माँ की वाणी समझ लो, चाहे गुरुजी की समझ लो, एक ही बात है। दो नहीं हैं, हम एक हैं, एक प्राण और दो शरीर हैं।

हम एक प्राण हैं, आप सही मानना हम अलग-अलग नहीं हैं। आपको दिखाई तो जरूर पड़ते हैं, भाषा में, संतुलन में, शिक्षा में। हाँ, कमी हो सकती है, है ही, लेकिन आंतरिक दृष्टि से हम एक प्राण हैं। प्राण अकेला रह नहीं सकता। एक प्राण के बगैर दूसरा प्राण कैसे रहेगा? मुश्किल है। हम एक प्राण हैं।

बेटे! मैं आपसे यह कह रही थी कि आप हमारे हाथ बन जाइए, कौन-सा हाथ बनेंगे? बेटे! दाहिना हाथ बन जाए, तो बड़ी अच्छी बात है, पर चल तू, बायाँ हाथ बना रहे, तब भी हमें कोई एतराज नहीं। कौन-सा बायाँ हाथ? वह, जो अपना समय देता है। थोड़ा अंश देता है, थोड़ा समय देता है और दायाँ हाथ हमारा वह, जो अपना पूरा समय देता है, जो हमारे कंधे-से-कंधा मिला करके चलता है और भुजा-से-भुजा मिला करके चलता है, वह हमारा दाहिना हाथ है। आप में से जिसकी भी ऐसी कोई सामर्थ्य है, अपने को टटोलना केवल उदरपूर्ति में ही मत लगे रहना।

उदरपूर्ति कहने का मतलब यह है कि जो आप में से रिटायरमेंट के हैं, जिनकी कि नौकरी ज्यादा दिन की हो गई है। रिटायरमेंट का मतलब यह नहीं है कि आप 60 वर्ष के हो गए, तभी छोड़ेंगे। आप इस लायक हैं कि आपके पास थोड़ा-बहुत है तो आप यहाँ आ जाइए, आप से यहाँ काम लेंगे। आप यहाँ नहीं आ सकते हैं, तो आप से वहाँ

काम लेंगे। कम-से-कम आप अपनी संकीर्णता को तो छोड़िए।

आपके ऊपर इतना उत्तरदायित्व है, आपके ऊपर ऋण है। समाज का ऋण है और राष्ट्र का ऋण है। राष्ट्र का ऋण चुकाया जाना चाहिए। आपको नहीं मालूम पड़ता; लेकिन हमको मालूम पड़ता है कि हमारे और आपके ऊपर राष्ट्र का कितना बड़ा ऋण है। जिस मार्गदर्शक ने आपको प्रेरणा दी है, आपको मार्ग बताया है, आपकी जिम्मेदारी होती है कि आप थोड़ा आगे आइए। अपनी जिम्मेदारियों का भी निर्वाह करिए और साथ-साथ में आप समाजसेवा भी करिए। यह परिपूर्ण तपस्या है।

विचारों की गति

नहीं साहब! माला ही जपेंगे और माला के अलावा और कोई काम नहीं करेंगे। नहीं बेटा! यह तो अधूरा है, न इससे स्वर्ग मिलेगा, न मुक्ति मिलेगी और न तुझे कुछ मिलेगा। माला भी ले हाथ में और भाला भी ले हाथ में। एक गुरु हुए हैं— अर्जुनदेव।

उन्होंने एक हाथ में माला और एक हाथ में भाला का नारा दिया था। भाले का मतलब क्रांति। क्रांति किसकी? विचारों की क्रांति। विचारों की क्रांति कैसी है? विचारों की क्रांति आपको नहीं मालूम है? आपको नहीं मालूम है, तो मैं समझा देती हूँ ।

विचारों की क्रांति वह है कि जहाँ कहीं भी हम जा रहे हैं, वहाँ दूसरों पर अपनी छाप छोड़ते हुए चले जा रहे हैं और लोग हमारे विचारों को सुनने-समझने के लिए आते हुए और यह कहते हुए चले जा रहे हैं कि हाँ, यह है कोई काँटे का आदमी। यह है कोई लायक व्यक्ति, इसकी बात सुननी चाहिए। कौन-सी सुननी चाहिए? यही आप उसको समझ लें, ज्यादा गहराई में न जाएँ।

बेटे! मैं तो यही कहने के लिए आई। अभी दो-चार दिन हुए हैं, मैंने एक पेपर पढ़ा। पेपर पढ़ा कि एक व्यक्ति की तीन कन्याएँ थीं। उनको दहेज का दानव निगलता हुआ चला गया। हमारी बेटियों को, हमारी बहनों को, हमारी बहुओं को, बेटे! यह खाए जा रहा है। आप सही मानना हम भीतर-ही-भीतर ऐसे तिलमिला जाते हैं, पर क्या करें? सिर धुनकर रह जाते हैं। हम अपने भाग्य को कोसते हुए रह जाते हैं और लानत उन पर डालते हैं कि जो हमारे कहे जाते हैं, हमारे कहाए जाते हैं। हमारे भी हैं और लालची भी हैं और स्वार्थी भी हैं। आगे भी याद करते जाते हैं। पीछे से दहेज भी लेते जाते हैं, दोनों काम करते हैं। यह कैसी विडंबना है? [क्रमशः अगले अंक में समापन]

नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात्।
एतैरुपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम॥

—मुंडकोपनिषद्-3/2/4

अर्थात यह आत्मा निर्बल व्यक्तियों को प्राप्त नहीं होती, प्रमाद, तप और चिह्न त्याग अर्थात संन्यास से भी नहीं मिलती। जो विद्वान इन त्याग आदि उपायों से बराबर यत्न करते रहते हैं, उनको यह आत्मा प्राप्त होती है और वे ब्रह्मधाम में प्रवेश करते हैं।

प्रकृति में फैलती प्रकाश-किरणें

प्रकृति में फैलती प्रकाश-किरणें शतवर्षीय महातप की भवितव्यता है, जिसे आगामी समय में घटित व फलित होना है। 'प्रकृति' शब्द में सृष्टि के सभी कार्य और कारण समाये हैं। इसमें फैला अँधियारा समूचे जीवन एवं जगत् को अँधेरे में डाल देता है। इनमें अनेकों विकृतियाँ, विसंगतियाँ, विक्षोभ उत्पन्न कर देता है। विष की विषमय-विषमता इसी की देन है। बीते हुए वर्षों में हममें से हरेक ने इसे देखा है और अभी भी इसे देख रहे हैं। कोरोना नाम की वैश्विक महामारी को हम सबने अभी कुछ वर्षों में पहले ही अनुभव किया है। उस समय समूची धरती में जैसे जीवन ने मृत्यु का पहरावा पहन लिया था। चारों ओर से उफनता महाविष साँसों से, हाथों से एकदूसरे में समाने लगा था। हर कोई एकदूसरे को छूने से डरने लगा था। इस महाविपदा को हमने बड़े नजदीक से देखा है। हाँ, यह अलग बात है कि हम यह नहीं जान पाए कि किसने शिव रूप धारण कर इस महागरल का विषपान किया और मरती हुई, मुरझाती हुई, रुकी और थमी दुनिया फिर से जीवन पाकर चलने लगी।

अपने जीवन के अंतिम चार-छह वर्षों में परमपूज्य गुरुदेव ने इस बारे में कई तरह से बताया और चेताया था। उन्होंने प्रकृति में पनप रहे विषम विष के बारे में लिखते हुए आगाह किया था। इस बारे में उन्होंने लिखा था, सीधी गौ की तरह सदा से अपने दुग्ध अमृत का पान कराने वाली प्रकृति-अचानक क्रुद्ध सिंहनी की तरह सब तहस-नहस करने के लिए उतारू हो गई है। जब किसी ने पर्यावरण और अंत:करण के एकदूसरे पर पड़ने वाले प्रभावों के बारे में गहराई से सोचा भी न था, तब उन दिनों इस विषय पर अखण्ड ज्योति पत्रिका में विशेष लेख लिखे गए थे। जलसंकट एवं प्राकृतिक आपदाओं के बारे में उन्होंने अपने प्रवचनों में जागरूक किया था। आज हम सभी इस सत्य को घटित होते हुए देख रहे हैं। जलसंकट तो गाँव-गाँव पहुँच गया है। रही बात प्राकृतिक आपदाओं की तो उनकी आवा-जाही लगी ही रहती है। कभी इनका एक रूप होता है, कभी दूसरा। यह सब प्रकृति में पसरे अँधियारे के आसुरी उपद्रवों का ही परिणाम है।

यह अलग बात है कि हम यह नहीं जान पाए कि किसने शिव रूप धारण कर इस महागरल का विषपान किया और मरती हुई, मुरझाती हुई, रुकी और थमी दुनिया फिर से जीवन पाकर चलने लगी।

महान ऋषियों ने प्रकृति के संपूर्ण स्वरूप को अपनी समाधि-साधना में देखा और कहा—

'तमेकनेमिं त्रिवृतं षोडशान्तं
शतार्धारं विंशतिप्रत्यराभिः।
अष्टकैः षड्भिर्विश्वरूपैकपाशं
त्रिमार्गभेदं द्विनिमित्तैकमोहम्॥'

श्वेताश्वतर उपनिषद् के अध्याय-एक के इस चौथे श्लोक में ऋषि का कथन है—'वह प्रकृति एक नेमिवाली है।' नेमि का अर्थ गोल घेरेवाला जीवनचक्र है। इसके ऊपर सत्, रज, तम—इन तीन गुणों के तीन घेरे हैं। इस जीवनचक्र के मन, बुद्धि और अहंकार तथा आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी—इन आठ के सूक्ष्म तत्त्व एवं इनके ही

आठ स्थूल रूप—इस प्रकार सोलह सिरे हैं। फिर इसके शतार्द्धअरं यानी कि सौ के आधे पचास अरे, यही संसार चक्र में अंतःकरण की वृत्तियों के पचास भेद हैं। इनके बीस सहायक अरे—पंच महाभूतों के कार्य—दस इंद्रियाँ, पाँच विषय और पाँच प्राण हैं। फिर इसमें 6 अष्टक भी हैं। ये छह अष्टक हैं— 1. पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि एवं अहंकार, 2. शरीर की आठ धातुएँ अर्थात त्वचा, चमड़ी, मांस, रक्त, मेद, हड्डी, मज्जा और वीर्य, 3. अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व व वशित्व—ये आठ ऐश्वर्य, 4. धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्य—ये आठ भाव, 5. ब्रह्मा, प्रजापति, देव, गंधर्व, यक्ष, राक्षस, पितर और पिशाच—ये आठ देव योनियाँ, 6. समस्त प्राणियों के प्रति दया, क्षमा, निंदा न करना, शौच, अनायास मंगल, अकृपणता और अस्पृहा—ये आत्मा के आठ गुण। इन छह अष्टकों के साथ अनेक रूपों में प्रकट होने वाली आसक्ति का एक पाश या बंधन है। फिर इसके तीन मार्ग—1. देवयान, 2. पितृयान एवं 3. एक योनि से दूसरी योनि में जाने का मार्ग है। पुण्य कर्म एवं पापकर्म—ये ही दो जीव के जीवन को घुमाने वाले निमित्त हैं। इस चक्र की नाभि यानी कि केंद्र में अज्ञान या मोह है। यही इस जगत् और इस जीवनचक्र का केंद्र है।

इस एक श्लोक में संपूर्ण प्रकृति का, इससे संचालित जीवन एवं जगत् का इतना सूक्ष्म व व्यापक वर्णन शायद ही अन्यत्र कहीं हो। श्रीमद्भगवद्गीता के 7वें अध्याय के 4 व 5 श्लोक में इसी को सरल ढंग से समझाया है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्॥

पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—ये आठ प्रकार वाली मेरी प्रकृति है, परंतु यह जड़ प्रकृति है और हे महाबाहो! इससे दूसरी को, जिससे संपूर्ण जगत् धारण किया जाता है, मेरी जीवरूपा परा अर्थात चेतन प्रकृति जान।

वेद-उपनिषद् की ऋषि वाणी हो अथवा श्रीमद्भगवद्गीता में स्वयं भगवान के वचन—सभी का सार यही है कि प्रकृति ने जीवन व जगत् को धारण कर रखा है। वही इसकी संचालक कर्त्ता-धर्ता है। समूचा सृष्टिचक्र उसी के चलाए चलता है। यदि इस व्यवस्था में अँधेरा फैल जाए, इसमें विष घुलने लग जाए, तो सारी व्यवस्था का अस्त-व्यस्त होना या फिर नष्ट होने लग जाना स्वाभाविक है। यह तो वही बात हुई, जैसे कि जहाँ से समूचे शहर को पानी की सप्लाई होती है, वहीं उसके मूल जलस्रोत में जाकर कोई जहर घोल दे अथवा जहाँ से समूचे देश-प्रदेश या क्षेत्र को बिजली

हम जानते हैं कि गंदा पानी जमा होने से डेंगू, मलेरिया के मच्छर पनपते हैं। तो यह भी जान लें कि यदि जीवनशैली में तमस् बढ़ा, तो असुरता ही पनपेगी।

जब अति व अतिरेक हो जाता है, तो प्रकृति स्वयं संज्ञान लेती है। वैसे भी आदिमाता प्रकृति ने महातपस्वी के सौवर्षीय तप से संतुष्ट होकर जगत् को जीवन का वरदान देने का निश्चय किया है। अब तक की सघन अँधेरी रात बस बीतने ही वाली है। अब तो असुरों का अंत समीप है।

सप्लाई होती है, वह पावर हाउस या पावर ग्रिड कोई नष्ट कर दे। तब सप्लाई होने वाला जल विषैला होकर जीवन नहीं, मृत्यु प्रदान करने लगेगा। इसी तरह से बिजली के बिना भी पूरे क्षेत्र का जीवन ठप हो जाएगा। महाबली असुरों ने, उनकी असुर सेना ने यही किया है। उन्होंने प्रकृति के जीवन-स्रोतों में जहर घोला है। उन्होंने प्रकृति में जीवन-व्यवस्था के शक्ति-संचार को अँधेरा फैलाकर ठप किया है। सभी पंचमहाभूतों में फैलता-बढ़ता प्रदूषण, समस्त जीवों के जीवन में बढ़ते-फैलते नए-नए नाम लेकर पनपते शारीरिक-मानसिक रोग इसी के कारण अपनी नवीन वृद्धिदर प्राप्त कर रहे हैं।

प्रकृति में बढ़ता-फैलता अँधियारा एवं इसमें घुल रहा विष—यही इसका कारण है। पूछा जा सकता है कि यह सब हुआ कैसे? तो उत्तर यह होगा कि हमीं असुरों के बहकावे में आ गए। हमने अपने मन-तन एवं जीवन में तामसिकता को बढ़ाने वाली जीवनशैली अपना ली। हमने अपने मन में आसुरी ठिकाना बनने दिया। विश्वास नहीं होता तो स्वयं के खान-पान, रहन-सहन, शयन-जागरण की जाँच कर लें, अपने सोच-विचार को परख लें। खुद ही पता चल जाएगा कि हम क्या थे, क्या हो गए और हमें क्या होना चाहिए! क्या हम सचमुच ही वर्तमान जीवनशैली के साथ ऋषिपुत्र, देवपुत्र कहे जाने, कहलाए जाने के योग्य बचे रह गए हैं। हाँ, यदि थोड़ा-बहुत, कहीं-कुछ बचा रह गया है, तो बस, केवल शतवर्षीय तप-साधना की ऊर्जा के कारण। हम जानते हैं कि गंदा पानी जमा होने से डेंगू, मलेरिया के मच्छर पनपते हैं। तो यह भी जान लें कि यदि जीवनशैली में तमस् बढ़ा, तो असुरता ही पनपेगी।

जब अति व अतिरेक हो जाता है, तो प्रकृति स्वयं संज्ञान लेती है। वैसे भी आदिमाता प्रकृति ने महातपस्वी के सौवर्षीय तप से संतुष्ट होकर जगत् को जीवन का वरदान देने का निश्चय किया है। अब तक की सघन अँधेरी रात बस बीतने ही वाली है। अब तो असुरों का अंत समीप है। महाशक्ति ने उनसे कह दिया है—**यूयं प्रयात पातालं यदि जीवितुमिच्छथ॥** *(दुर्गासप्तशती, 8/26)* असुरो! यदि तुम जीवित रहना चाहते हो, तो वापस अपने पाताल के अँधेरों में लौट जाओ; क्योंकि अब तमस् का नाश होकर सत् की—सतयुग की प्रतिष्ठा होगी। इसी के प्रकाश की किरणें प्रकृति में फैलेंगी। फिर न तो असुर बचेंगे, न उनकी असुरता और आसुरी अँधियारा। आसुरी विष का समापन भी इसी के साथ होगा।

अब मृत्यु के रुदन का नहीं, जीवन के गीत गाने का समय आ पहुँचा है। प्रकाश की किरणें सबसे पहले पूरब दिशा में लालिमा का रंग फैलाती हैं। ऐसा भी कुछ यहाँ भी होना है। प्रकृति में फैलने वाली ये प्रकाश-किरणें सबसे पहले अंतर्जगत् को अपने रंग में रँगेंगी, फिर धरती पर फैलती चली जाएँगी।❑

महान और व्यापक क्षेत्र की महती उथल-पुथल में सूक्ष्मशक्ति ही काम करती है। अदृश्य जगत् का सूक्ष्मप्रवाह नई उथल-पुथल करने के लिए अपने उद्गम से चल पड़ा है और अपना उद्देश्य पूरा करके ही रहेगा। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेकानेक प्रतिभाओं को हनुमान, अर्जुन की तरह अपने प्रभाव में लेकर निश्चित प्रयोजन के निमित्त उन्हें बलपूर्वक लगा देगा। साथ ही अनर्थों को निरस्त करने के लिए उनके साथ कट-कटाकर जूझ जाएगा।

नैतिक एवं बौद्धिक क्रांति का आह्वान

वैयक्तिक जीवन एवं सामाजिक क्षेत्रों में घुसी हुई भ्रांतियाँ समय के साथ चित्र-विचित्र प्रथा-परंपरा बनकर उभरती हैं और प्रचलन में इस तरह गुँथ जाती हैं कि उनकी अनुपयुक्तता के बारे में संदेह करने तक की आवश्यकता नहीं समझी जाती।

इन पर गंभीर पुनर्विचार की आवश्यकता रहती है, जिससे श्रेष्ठ मूल्यों की स्थापना की जा सके, स्वस्थ परंपराओं का निर्माण किया जा सके, जो मानवीय गरिमा के अनुकूल हों व सार्वभौम औचित्य का प्रतिनिधित्व करती हों। ऐसे में आज, जब बौद्धिक भ्रांतियाँ और नैतिक पतन अपने चरम पर हों, जीवन के हर क्षेत्र में आमूल परिवर्तन करती एक नैतिक एवं बौद्धिक क्रांति समय की माँग है।

वास्तव में मानवीय सत्ता स्रष्टा की अनुपम कलाकृति है। उसे इसलिए सृजा गया है कि अपनी विशिष्टता और वरिष्ठता के सहारे इस विश्व उद्यान को सुरभित, समुन्नत रखा जा सके। औसत नागरिक की तरह सादगी भरा निर्वाह, उत्कृष्ट चिंतन और आदर्श चरित्र की गौरव-गरिमा, पवित्रता एवं प्रखरता पर आधारित समर्थ व्यक्ति, जिसका अनुकरण करने वाले निरंतर ऊँचे उठते, आगे बढ़ते रहें। संक्षेप में यह है मनुष्य की नीति-मर्यादा का सार-संक्षेप, इसका जो जितना परिपालन करता है, वह उतना ही नीतिवान माना जाएगा।

इस निर्धारण को जो जितना तोड़ता है, जो लोभ, मोह और अहंकार के लिए ही मरता है, जिसे वासना-तृष्णा के अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता, जिसके मन में लोक-मंगल के उत्तरदायित्व निभाने के लिए उल्लास नहीं उठता, उसे अनैतिक कहना चाहिए। उद्धत अपराधों की तरह संकीर्ण स्वार्थपरता भी तत्त्वदर्शियों द्वारा अनीति ही मानी गई है।

देखा जाना चाहिए कि अनीति ने व्यक्तिगत रुझान और सामुदायिक प्रचलन में कितनी गहरी जड़ें जमाई हैं, इन्हें उखाड़ने के लिए इतनी ही गहरी खुदाई करने की आवश्यकता पड़ेगी। हर व्यक्ति को समझाया जाना चाहिए कि प्रस्तुत प्रवाह में बहने पर वह किस प्रकार हर दृष्टि से घाटे-ही-घाटे में रहता है। समझना होगा कि यदि आदर्शवादिता अपनाई जा सके, तो उसमें पूरी तरह लाभ है।

बौद्धिक क्षेत्र में अंधविश्वास के उलूकों ने कितने घोंसले बना रखे हैं और वे कितनी निश्चिंततापूर्वक बस गए हैं, यह देखकर आश्चर्य होता है। आहार को लें—भुना-तला, मिर्च-मसाले वाला, स्वादिष्ट समझा जाने वाला अभक्ष्य ही हम सब उदरस्थ करते हैं, मांस-मदिरा व्यापक स्तर पर आहार का अंग बने हुए हैं।

यह भूलते ही जा रहे हैं कि मानवीय आहार में शाक-भाजी की प्रमुखता कितनी आवश्यक है। अन्न लेना हो तो उबला लेना ही पर्याप्त है, मांस मानवीय आहार में किसी दृष्टि से उचित नहीं बैठता है। खारा नमक, सोडियम क्लोराइड एक प्रकार का विष है। इसी प्रकार चीनी भी मीठा जहर सिद्ध होती है।

यदि आहार-क्षेत्र में विचार क्रांति का समावेश हो सके तो, सहज रूप में प्रस्तुत दुर्बलता और रुग्णता से आधा छुटकारा अनायास ही पाया जा सकता है।

इसी प्रकार सोने-जागने, श्रम करने, धूप-हवा के संपर्क में रहने, ब्रह्मचर्य के पालन जैसे

मोटे-मोटे प्रकृति-निर्देशों को पाला जा सके, तो मनुष्य भी अन्य स्वच्छंद जीवन जीने वाले प्राणियों की तरह नीरोग एवं दीर्घजीवी रह सकता है।

यदि आहार-विहार का प्रचलित प्रवाह उलटा जा सके तो समझना चाहिए कि पीड़ा सहने, चिकित्सा में धन गँवाने, अशक्त रहने, अनुपयोगी बनने, कुसमय बे-मौत मरने जैसे अगणित संकटों से सहज छुटकारा मिल सकता है।

मानसिक विक्षोभों का प्रधान कारण है— निषेधात्मक चिंतन। जो उपलब्ध है, उसका संतोष-आनंद लेने की अपेक्षा, जो नहीं है उसी की सूची बनाए फिरना, अधिक संपन्नों के साथ तुलना करके दरिद्र अनुभव करना।

तुलना करना ही है तो पिछड़ों के साथ करके अपने सौभाग्य को क्यों न सराहा जाए? चारों ओर जो उत्साह भरा पड़ा है, जिसे देखने, सोचने, स्मरण करने से कृतज्ञता, प्रसन्नता की अनुभूति होती है, उसी पर ध्यान केंद्रित क्यों न किया जाए?

मनोकामनाओं के पर्वत सिर पर लादने की अपेक्षा निर्वाह में संतोष करने की आदत क्यों न डाली जाए। अभीष्ट प्रतिफल की ललक में आकुल-व्याकुल रहने की अपेक्षा कर्त्तव्यपालन में निरत रहने और उतने भर में गर्व-गौरव अनुभव करने की आदत क्यों न डाली जाए? हार-जीत की परवाह न करते हुए भी खिलाड़ी जब प्रसन्नतापूर्वक खेल का आनंद ले सकते हैं तो जीवन नाटक में आने वाले उतार-चढ़ावों में अपना ही संतुलन क्यों बिगाड़ा जाए?

हर कोई हमारी मरजी पर चले, इसका आग्रह क्यों हो? अपनी जैसी विचार-स्वतंत्रता दूसरों को क्यों न अपनाने दी जाए? आदि प्रश्न ऐसे हैं, जिन पर यदि ठंढे मन से विचार किया जा सके और चिंतन के अभ्यस्त ढर्रे में विवेकयुक्त परिवर्तन किया जा सके तो तनाव, खीझ, चिंता, आशंका, आवेश जैसे कितने ही मनोविकारों द्वारा निरंतर झुलसते रहना समाप्त हो सकता है।

हँसने-हँसाने की हलकी-फुलकी चिंतन-प्रक्रिया एक आदत भर है, जिसका अनुकूलता या प्रतिकूलता से कोई गहरा संबंध नहीं है। मस्तिष्क सभी को उपलब्ध है। भाव-संवेदना से भरा-पूरा अंत:करण किसके पास नहीं है?

बस, क्षीरसागर-कैलास जैसे पुण्यक्षेत्र में भ्रष्टता और दुष्टता से सने कषाय-कल्मष भर लेने का ही परिणाम है कि ऋषिकल्प संभावना वाली देवात्म-चेतना निकृष्टता के नरक में आबद्ध होकर रह गई है। इसे उलटना हर विवेकशील के लिए संभव है। वाल्मीकि, अंगुलिमाल, बिल्वमंगल जैसे जब दृष्टिकोण बदलते ही कुछ-से-कुछ हो सकते हैं तो अन्य किसी के लिए वैसा आत्मपरिवर्तन क्यों कठिन हो सकता है।

शरीर-मस्तिष्क की तरह अर्थ भी जीवन का एक अहम पहलू है। आज हर धनी-निर्धन हर किसी की आर्थिक आवश्यकता बढ़ी-चढ़ी है और तंगी अनुभव होती है। संचय और अपव्यय के लिए तो कुबेर का खजाना भी कम पड़ता है। अनीति उपार्जन, अपराध, ऋण, रिश्वत, बेईमानी का दौर आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति के नाम पर चलता है।

इस कमी की पूर्ति उस तरह नहीं हो सकती, जिस तरह लोग चाहते हैं। लोभ-लिप्सा को न पटने वाली खाई और न बुझने वाली आग कहा गया है। रावण, हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, सिकंदर जैसे धनाध्यक्षों को जब वैभव के पहाड़ हाथ लगने पर भी संतोष न मिला, तो सामान्यस्तर वालों की बात ही क्या है? ऐसी दशा में अर्थ-संतुलन बिठाने के लिए दृष्टिकोण-परिवर्तन का नया आधार अपनाना पड़ेगा।

औसत देशवासियों के स्तर का निर्वाह 'तेते पाँव पसारिए जेती लंबी सौर', 'सादा जीवन-उच्च

विचार' वाले विलास और अपव्यय में कटौती जैसे दूरदर्शितापूर्ण सिद्धांत अपना लेने पर इस संबंध की समस्याएँ सहज ही हल हो जाती हैं। आलस्य-प्रमाद छोड़ा जाए, काम को प्रतिष्ठा का प्रश्न माना जाए और योग्यता-वृद्धि में उत्साह रखा जाए तो स्तर के अनुरूप आजीविका बढ़ना सुनिश्चित है।

प्रश्न विस्तार से कम, सदुपयोग से अधिक संबंधित है। थोड़े-से साधनों का भी यदि श्रेष्ठतम सदुपयोग बन पड़े तो गरीबी में भी अमीरों से बढ़कर आनंद के साथ जिया जा सकता है। परिश्रम और ईमानदारी की कमाई ही फलती-फूलती है। इस सिद्धांत को ध्यान में रखकर उपार्जन और उपयोग का संतुलन बिठाया जाए तो अर्थसंकट इस तरह किसी को भी न सताए, जैसा कि अपव्ययी, दुर्व्यसनी और मूढ़मान्यताओं से ग्रसित लोगों को निरंतर भुगतना पड़ता है।

अपने समाज में नर-नारी के मध्य बरती जाने वाली भेद नीति, जन्म-जाति के आधार पर मानी जाने वाली ऊँच-नीच, भिक्षा-व्यवसाय, मृतकभोज, बाल विवाह, अनमेल विवाह जैसी अगणित कुप्रथाएँ प्रचलित हैं। इनमें सबसे भयंकर है—विवाहोन्माद, जिसमें गरीबों द्वारा अमीरों का स्वांग बनाकर, अपने बरतन-कपड़े गँवा बैठने की मूर्खता की जाती है।

धर्म की आड़ में देवस्थलों पर चल रही बलिप्रथा एक घृणित एवं कुत्सित मूढ़-चलन है, जो किसी भी तरह देव संस्कृति का प्रतिनिधित्व नहीं करती। इनके घातक दुष्परिणाम को देखते हुए भी बुद्धिमान और मूर्ख इन सर्वनाशी कुप्रथाओं को छाती से लगाए बैठे हैं। इन सभी कुप्रचलनों में भ्रांति और अनीति बेतरह गुँथी हुई हैं, परंतु परंपरा के नाम पर उन्हें अपनाया और सर्वनाश के पथ पर बढ़ते चला जा रहा है, यह दुर्बुद्धि रुकनी ही चाहिए।

अपना समाज सहकारी सहायक बने, उसकी अभिनव संरचना में कौटुंबिकता के शाश्वत सिद्धांतों का समावेश किया जाए। न जाति-लिंग की विषमता रहे और न आर्थिक दृष्टि से किसी को अमीर-गरीब रहने दिया जाए, न कोई उद्धत-अहंकारी धनाध्यक्ष बने, न किसी को पिछड़ेपन की पीड़ा, भर्त्सना सहन करनी पड़े।

अपराध की गुँजाइश ही न रहे, यदि कहीं कोई उपद्रव उभरे, तो उसे लोकशक्ति द्वारा इस प्रकार दबोच दिया जाए कि दूसरों को वैसा करने का साहस ही शेष न रहे। मिल-बाँटकर खाने और हिल-मिलकर रहने की सामाजिक संरचना के अंतर्गत ही मनुष्य को सुख-शांति से रहने का अवसर मिल सकता है। यह सोचा जाए कि मनुष्य की भाँति अन्य जीवों को भी जीने का अधिकार है।

इस तरह आज आवश्यकता जीवन के हर क्षेत्र में विवेक एवं औचित्य के आधार पर नए युगदर्शन को खड़ा करने की एवं बौद्धिक तथा नैतिक क्रांति की है। सामाजिक क्रांति में ऐसे प्रचलनों को निरस्त किया जाना चाहिए, जो विषमता, विघटन, अन्याय और अनौचित्य के पृष्ठपोषक हैं। पारस्परिक स्नेह, सौमनस्य, सहयोग का विस्तार करने वाली 'वसुधैव कुटुंबकम्' की, 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की दृष्टिपोषक प्रथा-प्रचलनों को ही मान्यता मिले और शेष को औचित्य की कसौटी पर खोटी सिद्ध होने पर कूड़ेदान में झाड़कर बाहर फेंक दिया जाए।

8 अरब मनुष्यों में पाई जानी वाली भ्रांतियों, विकृतियों, दुष्प्रवृत्तियों से जूझना कठिन लगता भर है—युगमनीषा यदि उसे कर गुजरने के लिए तत्परता प्रकट करे तो सत्य में हजार हाथियों का बल होता है। इस उक्ति के अनुसार श्रेष्ठता का वातावरण भी इसी प्रकार बन सकता है, जिस प्रकार मुट्ठीभर लोगों ने अग्रगामी होकर, दुष्टता भरे प्रचलनों से लोकमानस को भ्रष्ट करके रख दिया है। ❑

राम मंदिर की प्राण प्रतिष्ठा

दिग-दिगंत में चर्चा छायी, राम मंदिर निर्माण की।
चलो अयोध्या प्राण प्रतिष्ठा, हो गई राम भगवान की॥
हर मंदिर-घर स्वच्छ चाहिए, निर्मल मन प्रभु को प्यारा है,
मन-वाणी-उर स्वच्छ चाहिए, जैसे गंगा की धारा है,
सत्कर्म करेंगे पावन जग में, भावना भरें कल्याण की।
चलो अयोध्या प्राण प्रतिष्ठा, हो गई राम भगवान की॥

जग में राम राज्य लाना है, आत्म सुधार करें हम पहले,
परिष्कार की करें साधना, परहित कष्ट सभी हम सह लें,
बिना त्याग निष्प्राण-प्रेम है, करें साधना ज्ञान की।
चलो अयोध्या प्राण प्रतिष्ठा, हो गई राम भगवान की॥

प्यार और सहकार बढ़ाएँ, उज्ज्वल भविष्य को लाना है,
विश्राम नहीं लेना है हमको, धरती को स्वर्ग बनाना है,
युग साहित्य को पढ़ें-पढ़ाएँ, हवा चली युग निर्माण की।
चलो अयोध्या प्राण प्रतिष्ठा, हो गई राम भगवान की॥

प्रज्ञावतार ने साहित्य लिखा है, उसको चिंतन में भरना है,
चरित्र बनेगा शुभ चिंतन से, चिंतन पवित्र ही करना है,
बच्चों को संस्कारित करके, कल्पना करें उत्थान की।
चलो अयोध्या प्राण प्रतिष्ठा, हो गई राम भगवान की॥

हमें चाहिए नारियाँ सीता सी, भाई-भरत-लखन से हों,
शक्ति-शील-सौंदर्य सुशोभित, आचरण राम के जैसे हों,
इच्छा है अब सारे जग में, लव-कुश सी संतान की।
चलो अयोध्या प्राण प्रतिष्ठा, हो गई राम भगवान की॥

—विष्णु कुमार शर्मा 'कुमार'

गायत्री परिवार से संबद्ध महिलाशक्ति में नवीन चेतना के संचार के लिए सुल्तानपुर (उत्तर प्रदेश) में
सफलतापूर्वक संपन्न हुआ कन्या कौशल शिविर

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-02-2024
Regd. N0. Mathura - 025/2024-2026
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP - 08/2024-2026

गायत्री परिवार से संबद्ध युवाशक्ति में नवीन चेतना के संचार के लिए झाँसी (उत्तर प्रदेश) में सफलतापूर्वक संपन्न हुआ युगसृजेता शिविर

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक-मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, विरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा-281003 से प्रकाशित। संपादक-डॉ. प्रणव पण्ड्या।

दूरभाष — 0565- 2403940, 2972449, 2412272, 2412273 मोबाइल — 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल- akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel के वीडियो युग निर्माण मिशन के लिए समर्पित है! हमारा एकमात्र उद्देश्य परम पूज्य गुरुदेव के विचारों को जन-जन तक पहुंचाने का है।

◆ पूज्य गुरुदेव द्वारा साधकों को दिए गए दिव्य प्रवचन, अमृत वाणी, ध्यान साधना

▼ आराध्य द्वारा लिखित पुस्तकों पर वीडियो, अखण्ड ज्योति के आर्टिकल, अमृत ज्ञान

◆ परम वन्दनीय माता जी द्वारा गाए गए भावनाशील प्रज्ञा गीत जो कि पूज्य गुरुवर को समर्पित रहे

▼ परम श्रद्धेय जी द्वारा लिखित पुस्तक आध्यात्मिक जीवन पर आधारित वीडियो एवम् आदरणीय चिन्मय भैया जी के दिव्यता से भरे उद्बोधन

एक छोटा सा प्रयास सभी प्रियजनों को गुरु के ज्ञान का अमृत पहुंचाने का...आप भी इस अमृत के ज्ञान को अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचाने का प्रयास कर गुरुकार्य में भागीदार अवश्य बनें "!

आप इन वीडियो को डाउनलोड करके मिशन की गरिमा के अनुरूप प्रयोग कर सकते हैं। धन्यवाद

प्रस्तुत हैं शांतिकुंज ऋषि चिंतन चैनल पर

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel को Subscribe करने के लिए क्लिक कीजिये और Bell 🔔 बटन को जरूर दबाएं ताकि आप को नोटिफिकेशन मिलते रहे।

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

All World Gayatri Pariwar Official Social Media Platform

शांतिकुंज हरिद्वार के ऑफिशल व्हाट्सएप चैनल awgpofficial Channel को Follow करे 👇👇👇

https://whatsapp.com/channel/0029VaBQpZm6hENhqlhg453J

Shantikunj Official WhatsApp Number 8439014110

शांतिकुंज की गतिविधियों एवं ग्रुप से जुड़ने के लिए अपना नाम लिख कर WhatsApp करें 👇👇👇

https://wa.me/8439014110

Official Facebook Page:-

https://www.facebook.com/awgpofficial

Official Twitter:-

https://twitter.com/awgpofficial

https://twitter.com/DrChinmayP

Official Instagram:-

https://www.instagram.com/awgpofficial

https://www.instagram.com/shantikunjrishichintan

Official Telegram:-

https://t.me/awgpofficial

https://t.me/shantikunjrishichintan

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Shantikunj Rishi Chintan Youtube Channel

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel

Youtube Channel:-

https://yt.openinapp.co/nq7tt

https://www.youtube.com/c/RishiChintan

https://www.youtube.com/c/shantikunjvideo

AWGP Official Website

http://www.awgp.org/

http://literature.awgp.org

Click here to subscribe Rishi Chintan Youtube Channel